शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 13 अंक : 6 1 जनवरी 2021

पौष, विक्रम संवत् 2077

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा

सम्पादक
डॉ. राजेन्द्र शर्मा

सह सम्पादक
भरत शर्मा

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय**

कार्यालय प्रभारी :
आलोक चतुर्वेदी : 8619926481

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति ₹ 25/- वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
आजीवन (दस वर्ष) ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

ग्राम विकास और राष्ट्रोत्थान

❑ **प्रो. रसाल सिंह**

आज भले ही ढाँचागत विकास ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है, किन्तु प्राचीन काल में सहभागिता और समरसता अर्थात् एक-दूसरे का सहयोग कर कार्य संपादित करने की सहकारी प्रवृति ग्रामीण समाज की भावना एवं संवेदना का प्राणीभूत तत्त्व थी। वह कृषि कार्य हो, कोई सामाजिक-सांस्कृतिक आयोजन हो, या अपने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग-उपभोग या प्रबंधन अथवा संरक्षण का कार्य हो, ग्रामीण लोग सामूहिक रूप से इन कार्यों को संपन्न किया करते थे।

9

अनुक्रम

4.	सम्पादकीय	- डॉ. राजेन्द्र शर्मा
5.	एकात्म ग्राम्य चिंतन	- हनुमान सिंह राठौड़
14.	ग्रामीण जीवन मूल्य, विमूल्य और आधुनिकता	- डॉ. रेखा यादव
16.	सामाजिक परिवर्तन और भारतीय ग्राम	- डॉ. शिव शरण कौशिक
18.	ग्राम विकास की संकल्पना एवं भारतीय नारी...	- डॉ. निर्भय कुमार
22.	कृषि विपणन में सुधार एवं कृषि विकास	- राजेश जांगीड़
24.	ग्रामीण विकास की नींव - पंचायती राज	- डॉ. अनीता मोदी
26.	भारतीय ग्राम : विकास एवं संस्कृति संरक्षण	- डॉ. ओमप्रकाश पारीक
29.	वर्तमान कृषक-हितैषी योजनाएँ	- डॉ. सुशील कुमार विस्सु
32.	ग्राम विकास - शिक्षक की भूमिका	- संदीप जोशी
37.	ग्रामीण विकास और रोजगार के अवसर	- डॉ. प्रशांत सिंह
39.	कृषि विधेयक : कृषि व ग्राम विकास का आधार	- चन्द्रवीरसिंह भाटी
41.	ग्रामीण विकास : आत्मनिर्भर भारत का आधार	- डॉ. सुमन बाला
44.	ग्रामीण विकास और महिलाएँ	- श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी
46.	उन्नत कृषि, उन्नत राष्ट्र का आधार	- डॉ. पी.एल. गुप्ता
47.	ग्रामीण विकास की अवधारणा, बाधाएँ एवं शिक्षा...	- बजरंग प्रसाद मजेजी
50.	उन्नत कृषि, उन्नत राष्ट्र	- डॉ. अरुण रघुवंशी
56.	Developing Villages Towards Developing..	- Dr.T.S. Girishkumar
58.	Reviving ancient era of prosperous farmers...	- Dr. Rakesh K. Pandey
60.	Evolving Agriculture – the Lifeline of ...	- Dr. Geeta Bhatt
62.	Migration of tribal people: Strategies for...	- Prof. Vipul J Somani
65.	भारतीय वांग्मय में शाश्वत जीवन मूल्य	- डॉ. अनिल कुमार दाधीच
69.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति : अध्यापक शिक्षा के ...	- डॉ. जसपाल सिंह वरवाल
72.	स्वदेशी संकल्पना, आर्थिक उदारीकरण के...	- भगवती जागेटिया

संपादकीय

डॉ. राजेन्द्र शर्मा

सम्पादक

भारत अपने साढ़े छह लाख गाँवों में बसता है। हमारा असली भारत, हमारा भारत वही है। कुल जनसंख्या का दो तिहाई भाग इन्हीं गाँवों में निवास करता है। गाँवों के विकसित हुए बिना विकसित भारत की कल्पना नहीं की जा सकती है। ग्राम विकास में कृषि, पशुपालन, ग्रामीण हस्तकला, लघु व कुटीर उद्योग एवं ग्रामीण अवसंरचना में बदलाव के द्वारा गाँवों का विकास करने के साथ-साथ गाँववासियों के जीवन में गुणात्मक उन्नति हेतु आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकी संबंधी पहलुओं में सकारात्मक बदलाव लाना शामिल है। ग्राम विकास की रणनीति में ग्रामवासियों के निजी एवं सामूहिक प्रयासों के अतिरिक्त राज्य की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है।

आज हमारे गाँव अनेक तरह की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से गुजर रहे हैं। देश में कृषि, कृषक, भूमिहीन परिवारों और खेतीहर मजदूरों की समस्याएँ तो वर्ष पर्यन्त ही चर्चा में रहती है। देश में किसान खुशहाल नहीं है। खेतिहर मजदूरों को दो जून की रोटी भी मुश्किल से मयस्सर हो पाती है। देश के 86.4 प्रतिशत किसान लघु व सीमांत किसान हैं यानी उनकी जोत दो हैक्टेयर से कम है। किसान पूरी मेहनत से फसल पैदा करता है परन्तु कर्ज चुकाने का तकाजा होने व परिवार को चलाने के लिए नकदी की जरूरत होने की वजह से उन्हें फसल बेचने की जल्दी होती है और फिर उसके पास भंडारण की क्षमता भी तो नहीं है। इन दिनों हमें अनुभव आ रहा है कि किसान के खेत से नया आलू बाजार में आ रहा है तो सस्ता मिल रहा है परन्तु उससे पूर्व व्यापारी के गोदाम का आलू पचास रुपये किलो बिक रहा था। यही हाल अन्य कृषि उत्पादों का है। उपज की लागत तो छोड़िए परिवहन का भाड़ा भी नहीं निकल पाने पर किसानों को टमाटर सड़क पर फेंकते हुए आए दिन देखा जाता है। पर क्या किसी ने कम्पनी के उत्पादों को ऐसे फेंकते देखा है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि स्वतन्त्रता के बाद से गाँव और खेती-किसानी की समस्याओं को समाप्त करने के लिए कई कमेटियाँ और आयोग बने, बड़ी-बड़ी रिपोर्टें आई, कुछ अनुशंषाओं को क्रियान्वित भी किया गया, लेकिन समस्याएँ दूर नहीं हो पाई। तकरीबन अट्ठावन प्रतिशत किसान कर्जदार हैं। अहम प्रश्न यह है कि कृषक गरीब क्यों है? क्यों कर्ज किसानों के लिए मर्ज बना हुआ है और क्यों वे हजारों की संख्या में आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं? क्यों गाँववासी मजदूरी के लिए शहरों में पलायन कर रहे हैं? क्या हमारे नीति नियंताओं ने कभी यह सोचा है कि शहर आए लोग फिर गाँव जाने के लिए तैयार क्यों नहीं होते? गाँवों में ऐसा सुविधाजनक वातावरण कब बनेगा कि लोग शहर से लौटकर गाँव में काम कर सकें? आजादी के तिहत्तर वर्ष बाद भी हमारे किसान की औसत आय सरकारी कार्यालय में काम करने वाले कार्यालय सेवक से भी कम है।

आजादी के आन्दोलन के दौरान समय-समय पर महात्मा गाँधी ने ग्राम विकास के बारे में अपने विचार व्यक्त किए हैं। गाँधी द्वारा दिखाए गए मार्ग में युगानुकूल समायोजन करके हम अच्छे, स्थायी व प्रभावी समाधान प्राप्त कर सकते हैं। आज पहली जरूरत पर्यावरण आधारित कृषि को तेजी से अपनाने की है। देश के गाँव जैविक खेती के प्रयोग स्थल बन कर उभर सकते हैं। इससे किसान का सशक्तीकरण होने के साथ ही पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी कम होगी। यदि किसान की फसल की उत्पादन लागत कम हो जाए, उत्पादकता बढ़ जाए, बेचने के लिए बाजार मिले और उपज का पूरा व उचित मूल्य मिल जाए तो किसान खुशहाल हो सकता है।

दूसरी जरूरत कृषि उपज की प्रोसेसिंग गाँव अथवा पंचायत स्तर पर करने की है ताकि खाद्य एवं कृषि की प्रासेसिंग की छोटी इकाइयाँ वहाँ पर प्रारम्भ हो और उनमें गाँववासियों को रोजगार उपलब्ध हो सके। कृषि के पूरक के रूप में ग्रामवासियों के पास लघु-कुटीर उद्योग होना आवश्यक है। इस उद्योग से न केवल उन्हें गरिमा मिलेगी, न केवल उनकी निष्क्रियता दूर होगी अपितु उनकी गरीबी भी दूर होगी। यह सर्वविदित है कि छोटे और कुटीर उद्योग हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं और कृषि संबंधी कारोबार में बड़ी भूमिका अदा करते हैं। इसलिए इनका गाँव-गाँव विस्तार करने के लिए जरूरी है कि इन्हें ब्याजमुक्त या न्यूनतम दरों पर ऋण उपलब्ध कराया जावे। सूचना प्रौद्योगिकी जैसी इकाइयाँ भी गाँव व कस्बा स्तर पर पनपे ताकि छोटे व कुटीर उद्योग प्रभावी तरीके से अपनी भूमिका निभा सके। इसके अतिरिक्त भूमिहीन परिवारों को आजीविका उपलब्ध कराने के लिए उन्हें अप्रयुक्त भूमि पर वृक्षारोपण एवं जल संरक्षण जैसे कार्यों से जोड़ना चाहिए।

सरकार, गाँववासियों, सामाजिक उत्थान में संलग्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों से यही अपेक्षा है कि उनके समन्वित प्रयासों से गाँव ऐसे हो जहाँ कोई गरीब न हो, छूआछूत का नामोनिशान न हो, ऊँच-नीच का भाव न हो। सभी के पास आजीविका के पर्याप्त साधन हो और लोग प्रसन्नतापूर्वक कार्य करने में गौरव का अनुभव करें। जहाँ न तो मादक पेय और न नशीली दवाइयों का सेवन हो। जो सम्मान पुरुषों को प्राप्त हो वही महिलाओं को भी मिले। हरेक को भारतीय जीवन मूल्यों से जुड़ी हुई बुनियादी शिक्षा सुलभ हो तथा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान वे शिल्प और कौशल में दक्ष हो सके। गाँव में परम्परागत चिकित्सा प्रणालियों जैसे आयुर्वेद, प्राकृतिक, योग आदि के साथ एलोपैथी का उचित सामंजस्य बैठाते हुए संतुलित एवं समन्वित चिकित्सा की व्यवस्था हो। गौ-पालन पुनः दृढ़तापूर्वक स्थापित हो क्योंकि गाय हमारे गाँव, कृषि व्यवस्था एवं समाज जीवन का केन्द्र बिन्दु है।

यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि अगर भारत के गाँवों का विकास नहीं हुआ और वे पिछड़े ही रहे तो भारत, भारत नहीं रहेगा। दुनिया में उसका अपना मिशन ही समाप्त हो जायेगा। इसलिए गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने पर जोर दिए जाने की जरूरत है। गाँव आत्मनिर्भर एवं विकसित होंगे तभी भारत आत्मनिर्भर एवं विकसित बनेगा। ❑

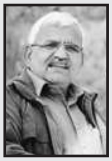

हनुमान सिंह राठौड़

शिक्षाविद् व
सामाजिक अध्येता

एकात्म ग्राम्य चिंतन

वर्तमान समय में जब किसी व्यक्ति को 'गँवार' कहते हैं तो वक्ता का तात्पर्य ग्राम-वासी नहीं, असभ्य, उज्जड़ होता है। यह वैसा ही है जैसे अंग्रेज भारतीयों (वास्तव में वे अपमानजनक अर्थ में 'नेटिव' शब्द प्रयोग करते थे) को 'ब्लैक, हीदन्स एण्ड पेगन्स' मानकर अपने रहने के स्थान 'कॉलोनी' (रोमन साम्राज्य में विजित क्षेत्र में बसायी गई सेवानिवृत सैनिकों की बस्ती जो दुर्ग-रक्षक की तरह कार्य करती थी।) को 'सिविल लाइन्स' (सभ्य लोगों की वीथि) कहते थे।

प्रश्न उपस्थित होता है कि तब 'है अपना हिन्दुस्तान कहाँ वह बसा हमारे गाँवों में' इस उक्ति का अर्थ क्या है? विश्व की प्राचीनतम, प्रगत सभ्यताओं में से एक है भारत! भारत जो विश्व गुरु रहा है, जिसकी संस्कृति का सतत प्रवाह तब से अनवरत है जब से इतिहास ने आँखें खोली हैं। अठारहवीं ईस्वी शताब्दी तक भारत विश्व की प्रथम क्रमांक की आर्थिक शक्तियों का अग्रेसर रहा है। क्या तथाकथित असभ्य पिछड़े गाँवों के बल पर यहाँ घी-दूध की नदियाँ बह सकती थी? क्या भारत सोने की चिड़िया कहला सकता था? भारत को फिर से वैभव सम्पन्न बनाना है तो सनातन संस्कृति के सुदृढ़ आधार पर सभ्यता के भग्नावेशों का जीर्णोद्धार करना होगा और इसके लिए - 'क्या थे, क्या हैं और क्या होना है' का पुन: विचार कर कर्म-प्रवण होना पड़ेगा।

भारत आदिकाल से ही ग्राम-गणराज्यों के देश के रूप में जाना जाता रहा है। ये ग्राम-गणराज्य स्वयं में पूर्ण स्वायत्त एवं स्वावलम्बी थे। वैदिक साहित्य से लेकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक में ग्राम से लेकर जनपद तक सुव्यवस्थित सभा-समितियों एवं उनकी कार्यप्रणाली का वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि ग्राम में रहने वाले कुटुम्बों (कुलों) की भी ग्राम-सभाएँ होती थी। ये लोक-संस्थाएँ ही शासन संचालन में सहकारी व नियंता होती थीं। ग्राम संगठन का प्रतिनिधि 'ग्रामणी' कहलाता था- इसी से ग्राम तथा ग्रामीण शब्द बने हैं। मनु ने इसे 'ग्रामपति' कहा है।

रामायण में तीन प्रकार के ग्रामों का उल्लेख आता है। कृषि ग्राम, गोकुल ग्राम तथा महाग्राम। जहाँ एक ही कुल के लोग अपने खेतों में ही निवास करते थे वह कृषि ग्राम कहलाता था। रूस में बनाये गए कम्यून या भारत में वर्तमान में जिन्हें 'ढाणी' कहते हैं, या पाश्चात्य शब्दावली में 'फार्म हाउस' का यह संयुक्त रूप था। पशुपालकों के ग्राम घोष या गोकुल ग्राम कहलाते थे। ये पुर या नगर के आस-पास होते थे। महाग्राम आज के कस्बे जैसे होते थे और ये सभी प्रकार की शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र होते थे।

कौटिल्य ने ग्राम-रचना के सम्बन्ध में विस्तार से विचार प्रकट किये हैं। राजा को निर्देशित किया गया है कि अपनी आवश्यकता व कौशल को ध्यान में रखकर दूसरे देशों से भी लाकर लोगों को बसाना चाहिए। ग्राम सौ से पाँच सौ घरों के हों तथा दो गाँवों के मध्य एक कोस (तीन किलोमीटर) से अधिक दूरी न हो। अर्थात् ग्रामों का एक सुगम पहुँच वाला 'ग्राम-संकुल' (मण्डल) बनना चाहिए जो आवश्यकताओं में एक-दूसरे के पूरक हों। आवश्यकता होने पर तुरंत एक से दूसरे ग्राम में सहायता पहुँचायी जा सके। ग्रामों की सीमा निर्धारण का भी विचार किया गया। प्राकृतिक सीमाएँ जैसे नदी, पर्वत उपलब्ध हों तो ठीक अन्यथा तालाब, खाई तथा बेर, जामुन, वट आदि वृक्षों की कतारें बनाकर सीमांकन किया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का चरागाह तथा ग्राम्य-वन तैयार हो जाता था। इन वनों में व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि वन्यजातियों के बसाने की व्यवस्था थी जो ग्राम-सुरक्षा तथा गुप्तचर व्यवस्था के दायित्व का निर्वहन करते थे। वन संरक्षण तथा वन्य खाद्य शृंखला नियंत्रण भी इनके जिम्मे था। वन-उपज पर मुख्य अधिकार इन्हीं का रहता था।

सिंचित कृषि के लिए बाँध, नहर, जलाशय निर्माण करवाना राजा का कर्त्तव्य था। यदि ग्राम स्वयं यह व्यवस्था करना चाहे तो राजा उन्हें आवश्यक सहायता उपलब्ध करवाते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारत की सभी गतिविधियों का केन्द्र ग्राम था। इसकी समृद्धि से आकर्षित होकर ही विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आए। भारत से वाणिज्य -व्यापार के लिए समस्त विश्व लालायित रहता था। जब अरब की आँधी से इस्लामी साम्राज्य का विस्तार हुआ और यूरोप के लिए भारत आने के स्थल मार्ग बंद हुए तो यहाँ आने

के समुद्री मार्ग खोजने की यूरोप में होड़ लग गई। जिन मसालों की गंध उन्हें खींचकर यहाँ लाई, जिस ढाका की मलमल से तन ढकने को वे उत्सुक रहते तथा एक अंगूठी से पूरे थान को निकलते देख स्तम्भित होते थे, जिसके इस्पात की धार-फौलाद की खनक दुश्मनों का दिल दहलाने के लिए दी जाने वाली चुनौती के वाक्यांशों की तपन थी, जिसके हीरों की चमक उन्हें चमत्कृत करती थी- उन सब के उत्पादन के केन्द्र भारत के ग्राम थे। यहाँ कि वाणिज्य वस्तुएँ अत्यंत उच्च कोटि की थीं, अर्थात् यहाँ की कुशलकर्मियों की निपुणता भी श्रेष्ठ थी और यूरोप में उसकी तुलना में कुछ नहीं था -यही उनके भारत के प्रति आकर्षण का एकमात्र कारण था। प्रश्न होता है कि भारत के ये कुशल उत्पादक, निपुण कारीगर, प्रगत उद्यमी उन दिनों कहाँ निवास करते थे? विदेशी व्यापार-विनिमय से जो सम्पदा आती थी वह वहाँ पहुँचती थी? ये केन्द्र थे ग्राम। क्योंकि भारत की आर्थिक उत्पादकता ग्राम केन्द्रित थी अत: ग्राम समृद्धि के केन्द्र थे।

यदि ग्राम आर्थिक उत्पादन एवं गतिविधियों के केन्द्र थे तो क्या भारत की यह क्षमता ग्रामों में योग्य शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण, तकनीकी ज्ञान व शोध की सुविधा के बिना संभव थी? क्या यह सोचना संभव है कि उस समय ग्राम आज की तरह विपन्न, पिछड़े रहे होंगे? स्पष्ट ही प्राचीन इतिहास एवं भारत के वैभव कालीन स्वर्ण युग के अध्येता का उत्तर नकार में ही आयेगा।

फिर इस रमणीय अक्षय ग्राम-वट को क्षति ग्रस्त किसने किया? इसकी जड़ों में पिघला हुआ सीसा किसने उंड़ेला? अंग्रेजों के आने से पूर्व भी भारत पर कई विदेशी आक्रमण हुए। यूनानी, शक, हूण, कुषाण तो यहीं के होकर विलीन हो गए। कवि गुरु के शब्दों में 'एक देहे हेलो लीन' एक ही, भारत-देह में विलीन हो गए। मुस्लिम आक्रमणकारी विलीन तो नहीं हुए, पर्याप्त मात्रा में प्रभावित होकर बदले भी, पर अपना अलग अस्तित्व आग्रहपूर्वक बनाये रखा। उनका प्रमुख उद्देश्य सत्ता स्थापना, लूट तथा मजहबी विस्तार था अत: भीषण अत्याचार हुए किंतु वे ग्राम व्यवस्था को बहुत अधिक क्षति नहीं पहुँचा सके क्योंकि मतांतरित नवमुसलमान उसी प्राचीन ग्राम-रचना का ही हिस्सा थे। उनके व्यवसायों में भी अंतर नहीं आया। आज भी कर्म आधारित जातियाँ हिन्दू व मुसलमानों में समान रूप से मिलती हैं। जब तक तबलीग जमात ग्रामों में नहीं पहुँची तब तक सामाजिक पर्व-उत्सव, रीति-रिवाज,, भूषा-भाषा, भोजन सब समान था। इस प्रकार मुस्लिम शासन में भी ग्राम की आर्थिक रचना पूर्ण रूप से और सामाजिक संरचना अधिकतर अप्रभावित रूप से बनी रही। गाँवों में किसानों के अतिरिक्त बढ़ई, लोहार, कुम्हार, जुलाहा, मोची, धोबी, तेली, नाई आदि व्यवसायी कामगार कृषकों की आवश्यकता पूर्ण करते थे और बदले में कृषि-उत्पाद प्राप्त करते थे। अतिरिक्त उत्पादन नगरों में विक्रय हेतु जाता था। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामों में कृषि और उद्योग का विशिष्टिकरण नहीं था अत: श्रम-विभाजन की स्पष्ट सीमा रेखा नहीं थी। मुख्यत: कृषि केन्द्रित होने पर भी परिवार खाली समय में घर पर सूत कातने, सिलाई आदि कार्य करते थे। आज भी अनेक ग्रामीण घरों में चरखा, घट्टी व सिलाई मशीन मिल जाएगी, पश्चिमी राजस्थान में चरवाहों को ऊँट, बकरी, भेड़ के बालों से कताई कर धागा बनाते हुए देखा जा सकता है। इस प्रकार ग्रामीण-कारीगरों को गाँव से ही अपने शिल्प के लिए आवश्यक कच्चे माल जैसे, मिट्टी, लकड़ी, सूत, चमड़ा, लौहे के औजार आदि का प्रबंध हो जाता था। इसी कारण मुगलकाल तक सतत आक्रमणों की श्रृंखला के बाद भी ग्रामों की कृषि व उद्योग व्यवस्था सामान्य किन्तु स्थायी और टिकाऊ बनी रही। बाहर की दुनिया से लगभग स्वतंत्र, अलिप्त, सार्थक, आत्मनिर्भर ग्राम सदियों तक स्थिर, अचल, परम्परागत सामाजिक ढाँचे के अविजेय दुर्ग बने रहे। इस दुर्ग में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् सैंध लगी।

जब अरब की आँधी से इस्लामी साम्राज्य का विस्तार हुआ और यूरोप के लिए भारत आने के स्थल मार्ग बंद हुए तो यहाँ आने के समुद्री मार्ग खोजने की यूरोप में होड़ लग गई। जिन मसालों की गंध उन्हें खींचकर यहाँ लायी, जिस ढाका की मलमल से तन ढकने को वे उत्सुक रहते तथा एक अंगूठी से पूरे थान को निकलते देख स्तम्भित होते थे, जिसके इस्पात की धार-फौलाद की खनक दुश्मनों का दिल दहलाने के लिए दी जाने वाली चुनौति के वाक्यांशों की तपन थी, जिसके हीरों की चमक उन्हें चमत्कृत करती थी- उन सब के उत्पादन के केन्द्र भारत के ग्राम थे।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व व्यवसाय सामान्यतया वंशानुगत थे। व्यक्ति-परिवार-जाति-ग्राम: ये सब पंचायत के अधीन थे। यह ग्राम स्वशासन पद्धति यूरोप के लिए अपरिचित थी तथा इससे राजस्व प्राप्ति भी नहीं हो रही थी अत: उन्होंने स्वशासन पर आधारित भारतीय ग्राम-गणराज्य व्यवस्था को समाप्त करने का कुचक्र रचा। इसका प्रारम्भ हुआ 1687 के मद्रास (चेन्नै) नगर निगम अधिनियम के क्रियान्वयन से। कल्याणकारी राज्य का तात्पर्य यह लिया गया कि समाज-कल्याण के समस्त कार्य सरकार ही करेगी। इंग्लैण्ड में जिस प्रकार जन्म से लेकर मृत्य तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप रहता था वैसा ही यहाँ करने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया। भारत की परम्परा तो सभी क्षेत्रों में समाज के स्व-स्फूर्त सहभाग की थी क्योंकि समाज के कार्यों को सम्पादित करने का दायित्व पूर्णतया राज्य को सौंपने पर समाज परावलम्बी, राज्य के अनुदान पर पलने वाला, अकर्मण्य बनता है तथा राज्य इन कार्यों को करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए करों में वृद्धि करने के लिए बाध्य

होता है। करों का बोझ समाज में आक्रोश, विद्रोह का बीजारोपण करता है तथा कर-चोरी को प्रोत्साहित करता है। वर्तमान समय में भी इसके उदाहरण मिलते हैं कि कर-वंचना के लिए प्रपंच करने वाले लोग समाज-कार्य पर पर्याप्त व्यय करते हैं। भारतीय मानस सामान्यतया कर चुकाने की अपेक्षा दान देने में अधिक उदार होता है, इसीलिए प्राचीन साहित्य में कर लगाने की उपमा मधुमक्खी से दी है जो प्रत्येक पुष्प से थोड़ा-थोड़ा मकरंद लेकर मधु बनाती है तथा बदले में उनके परागण क्रिया को सम्पन्न करती है।

अंग्रेजों ने भारत की ग्रामाधारित समाज रचना को भारत की समृद्धि व सुरक्षा तथा स्वाभिमान का कारण जानकर अपने राज्य को दीर्घकालिक, स्थायी तथा अक्षुण्ण बनाने के लिए इस स्वावलम्बी ग्राम-तंत्र को समाप्त करने की योजना बनाई। धीरे-धीरे उन्होंने समाज की शक्तियाँ राज्य द्वारा हस्तगत करना प्रारम्भ किया। परिणामत: ब्रिटिश राज्य एकाधिकारी, शक्ति केन्द्रित बनता गया और भारतीय ग्राम कमजोर होते गए। कुछ उदाहरणों से बात ध्यान में आएगी। प्राचीन ग्राम एक परिवार था और भूमि सामूहिक सम्पत्ति थी तथा ग्राम के समस्त कृषकों के लगान का सामूहिक भुगतान ग्राम पंचायत किया करती थी। अंग्रेजों ने भूमि ग्राम पंचायत की न मानकर व्यक्तिश: कृषक की भूमि माना और इस प्रकार ग्राम का सामूहिक लगान न लेकर व्यक्तिश: लेना प्रारम्भ किया। इससे ग्राम कृषक समाज एक इकाई नहीं रहा जिससे परस्पर सहकार से जिसकी उपज कम होती उसकी पूर्ति अन्यों द्वारा किया जाना कम या समाप्त हो गया। प्राचीन काल में कर कृषक की कुल उपज पर लगाया जाता था। भारतीय कृषि मानसून का जुआ है अत: उपज कम हुई तो कर स्वत: कम हो जाता था। अंग्रेजों ने भारत में कुल उपज के स्थान पर कुल जोत पर कर लगाया जो आज भी प्रचलित है। इससे कृषकों पर दबाव आ गया। यदि प्राकृतिक प्रकोप से फसल नष्ट हो गई तो भी उसके

पास जितनी भूमि है उसके अनुपात में कर देना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त ग्राम की भूमि किसी जमींदार को वार्षिक कर-संदाय के बदले दी जाने लगी। इस प्रकार जमींदार अपना देय कर अंग्रेजों को देने के लिए बाध्य था और इसलिए लगान वसूली के लिए वह कृषकों का उत्पीड़न भी करने को विवश हो गया। अंग्रेज की तुलना में जमींदार (ठाकुर) कृषकों की दृष्टि में 'विलन' बन गया जो भारतीय सिनेमा में आज भी जीवित है। इस प्रकार कृषक एक दुष्चक्र में फँस गया- लगान चुकाने के लिए भूमि बंधक रखनी पड़ने लगी, कृषक अपनी ही भूमि पर बंधुआ मजदूर बन गया, ग्रामों में नए पूँजी केन्द्र बनने लगे जो कृषक समाज के शोषक बिचौलिये बन गए तथा ग्रामों का सामूहिकता का भाव क्रमश: समाप्त होने लगा। सदियों से चली आ रही जल-संरक्षण, वन-संरक्षण, वन्यजीव संरक्षण, जलाशय, मार्ग, उद्यान आदि तथा सार्वजनिक उपयोग के निर्माण आदि रुक से गए। वन, जल-स्रोत, बाँध सब सरकार के हो गए- शेष समाज इनके स्वामित्व और उपभोग से वंचित हो गया और परिणामत: उसका लगाव इनसे हट गया और प्राकृतिक असंतुलन बहुत ही तीव्र गति से दिखायी देने लगा। अंग्रेजों ने भारतीय समाज के विदेशों में निर्यात पर करों में अत्यधिक वृद्धि कर यहाँ के उद्योगों को समाप्त प्राय कर दिया जिसका सर्वाधिक प्रभाव कुटीर-उद्योगों पर पड़ा। यहाँ का कच्चा माल निर्यात होकर निर्मित माल यहाँ के बाजारों को पाटने लगा। यूरोप में औद्योगिक क्रांति हमारे रक्त-वित्त से हो रही थी और हमारे उद्योग-वाणिज्य अधोगति को प्राप्त हो रहे थे। अब अंग्रेजों ने विश्व व्यापार में प्रथम पंक्ति के देश भारत को अविकसित घोषित ही नहीं किया, बना भी दिया। कृषि आधारित उद्योग प्रधान देश को मात्र कृषकों का देश बताना शुरू किया। ग्रामोद्योग समाप्त होने के कारण बेरोजगार लोग खेतों में ही नियोजित हुए अत: कृषि पर अत्यधिक भार पड़ने के कारण कृषि अनार्थिक हो गई और कृषि व्यवस्था चरमरा गई।

भारत ने अपने लम्बे इतिहास में बहुत से साम्राज्य देखे, परन्तु गुणात्मक दृष्टि से यदि तुलना करें तो अंग्रेजी राज अत्यन्त कुटिल, शोषक तो था ही, साथ ही वह भावात्मक, सांस्कृतिक, शैक्षिक व समाज-संगठन जैसे क्षेत्रों को भी आघात पहुँचाने वाला सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता के बाद केवल अंग्रेज यहाँ से हट गए लेकिन उनका जो शोषक प्रशासनिक ढाँचा, उसकी मानसिकता तथा कार्यप्रणाली वैसी ही रह गई। उन दिनों छीनी गई ग्रामों की स्वायत्तता आज भी नहीं लौटी है। 'ग्राम-पंचायत राज' की संकल्पना भी राजनीतिक दाँव-पेचों तथा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गई है। गाँधी जी ने 'ग्राम-स्वराज्य' की स्थापना की आवश्यकता प्रतिपादित करते समय कहा था-

''मैं कहना चाहूँगा कि यदि गाँव नष्ट हो गए तो भारत भी नष्ट हो जाएगा। भारत-भारत नहीं रहेगा। उसके अस्तित्व का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। गाँव का पुनरूत्थान तभी संभव है जब वह शोषण का शिकार न बने। ... हमें ग्रामों को स्वयंपूर्ण, सक्षम, आत्मनिर्भरता के मार्ग पर ले जाना होगा।''

अभी तक के ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर यदि हम 'समग्र एकात्म ग्राम विकास' संबंधी कार्य योजना पर विचार करें तो प्रथम आवश्यकता गुलामी की मानसिकता से मुक्ति पाकर स्वात्म बोध, स्वगौरव का जागरण करना आवश्यक है। 'हम कर सकते हैं' का संकल्प आवश्यक है। युगानुकूल ग्राम-पुनर्रचना के लिए हमें अपने सनातन धर्म से चार सूत्र मिल सकते

हैं –

1. ग्राम में व्यक्तिगत अधिकारों की अपेक्षा ग्राम के प्रति अपने कर्त्तव्य बोध का जागरण।

2. 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' मंत्र के आधार पर सर्व-सुमंगल की सहकारी भावना का विकास। प्रत्येक कार्य ग्राम का कार्य है और इसके लिए सामंजस्यपूर्ण सहयोग के लिए सभी अपने जिम्मे कार्य का कर्त्तव्य भाव से निर्वहन करें।

3. प्रकृति के शोषण की मनोवृत्ति से परावृत कर दोहन की मानसिकता का निर्माण। इसके लिए प्रकृति के प्रति माता मानकर पूजा का भाव पुनः विकसित करना।

4. संयमित उपभोग और भोग में मर्यादा पालन का अभ्यास ताकि समाज हित में देने की वृत्ति का विकास हो। वेद का कथन है- 'शत हस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।' अर्थात्- कर्मयोगी बनकर सैंकड़ों हाथों से उपार्जन करें ओर समाज हित में हजार हाथों वाला बनकर उसका विसर्जन कर दें।

ग्राम-विकास का तात्पर्य केवल क्षतिपूर्ति या दोष निवारण तथा आर्थिक उपलब्धियाँ प्राप्त करना नहीं है, समाज को ऐसा स्वरूप देना है कि वह अपने जीवनोद्देश्य की प्राप्ति की साधना कर सके। यह कार्य बाह्य प्रक्रिया निर्देशित नहीं हो सकता। बाह्य व्यक्ति या संगठन तो उत्प्रेरक का कार्य कर सकता है, यह सम्पूर्ण प्रक्रिया भले स्वचालित न हो पर क्रमशः इसे स्व-निर्देशित तथा स्वावलम्बी होना चाहिए। इसे 'उर्वारूकमिव' (खरबूजे की तरह) अन्यों के परिपाक के लिए अनुकरणीय उदाहरण भी बनना चाहिए। 'ग्राम-विकास-संकुल' की अवधारणा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है।

समग्र-विकास में रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा सबको सुलभ हो, ऐसी कल्पना रहती है। किन्तु प्रश्न है कि इनकी प्राप्ति साध्य करने हेतु साधनों का विवेक करना या नहीं? रोटी, कपड़ा, मकान जुटाने के लिए किसी भी माध्यम से धन कमाना या अर्थ और काम को धर्म की लक्ष्मण रेखा से आबद्ध करना? अतः हम केवल समग्र विकास की बात नहीं करते, हम 'एकात्म समग्र विकास' की बात करते हैं। हमें ग्राम विकास विधायी धर्म का संरक्षण करते हुए करना है। ग्राम में सुव्यवस्थित, संस्कारक्षम पूजा/ उपासना स्थल हो। संस्कारक्षम ग्राम हो अर्थात् व्यसन, कुरीतियों, विवादों से मुक्त सामाजिक समरसता का आदर्श उदाहरण बने। अथर्ववेद का कथन है –

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतिर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि।।

(3-8-5)

"(हे मनुष्यों) हम आपके विचारों, कर्मों तथा संकल्पों को एक भाव से संयुक्त करते हैं। पहले आप जो विपरीत कर्म करते थे, उन सबको हम श्रेष्ठ विचारों के माध्यम से अनुकूल करते हैं।"

अर्थात् ग्राम के सकारात्मक विचार वाले कार्य प्रारम्भ करेंगे, विपरीत कर्म करने वालों को अपने श्रेष्ठ आचरण-व्यवहार द्वारा अनुकूल करेंगे किन्तु जो दुष्ट प्रवृत्ति के विघ्न-संतोषी लोग सुधरने को तैयार नहीं हैं उनके नियंत्रण-निष्कासन का बल भी उत्पन्न करेंगे-

यो ग्रामदेशसङ् घानां कृत्वा सत्येन संविदम्।
विसंवदेन्नरो लोभातं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्।।

(मनु. 8-219)

"जो व्यक्ति ग्राम, देश या समुदाय से सत्य वचन पूर्वक प्रतिज्ञा करके फिर लोभवश उसे भंग कर दे तो राजा उसे राष्ट्र से बाहर निकाल दे।"

ग्राम में संचालित विद्यालय की सुव्यवस्था में सहयोग तथा संस्कार केन्द्रों का निर्माण होना चाहिए। सद्साहित्य तथा विविध ज्ञानोपयोगी पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं से युक्त सार्वजनिक पुस्तकालय व वाचनालय की व्यवस्था हो। ग्राम-साक्षर हो तथा अभिभावक शिक्षा के प्रति जागरूक हों ताकि विद्यालय समाज का विद्यालय बन सके। समस्त शासकीय ग्राम-पूरक योजनाओं, ग्राम पंचायत के कार्य व अधिकार के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। ग्राम के सार्वजनिक सूचना-पट्ट पर सुविचार, समाचार, कार्यक्रम सूचना आदि प्रसारित करने की व्यवस्था आवश्यक है।

ग्राम-आरोग्य के लिए ग्राम स्वच्छता, जल निकास, कचरा-संग्रहण व निस्तारण व्यवस्था, घरों में या सामुदायिक शौचालय व्यवस्था, क्रीडा व्यवस्था, व्यायामशाला, योग केन्द्र, चिकित्सा केन्द्र, औषधीय पौधा रोपण तथा ग्राम वन का रोपण-रक्षण-पोषण। ग्राम को प्लास्टिक मुक्त बनाना, प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करना। आरोग्य के लिए ग्राम को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए वृक्षारोपण, सौर उर्जा, गोबर गैस का उपयोग, जैविक खेती को प्रोत्साहन, खेतों को रसायन मुक्त करने का अभियान। जल-संधारण की घरों एवं खेतों में व्यवस्था।

ग्राम स्वावलम्बन के लिए कृषि आधारित व ग्राम्य कुटीर उद्योग, लघु उद्योग हेतु कौशल प्रशिक्षण। बैल आधारित आधुनिक कृषि यंत्रों के विकास से कृषि कार्य सुगम करना। गाँव को कर्जमुक्त बनाना तथा आर्थिक सहायता हेतु सहकारी ऋण व्यवस्था करना। ग्राम में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हुए उद्योगों का विकास।

ग्राम सुविधा सम्पन्न होना चाहिए। दूरसंचार, डाकघर, बैंक, चिकित्सालय, सहकारी केन्द्र, यातायात साधन, शुद्ध पेयजल, चरागाह, विद्यालय, उपासनागृह, श्मशान आदि समस्त सुविधाएँ गाँव में उपलब्ध होनी चाहिए ताकि हर कार्य के लिए शहरों में नहीं जाना पड़े। ग्राम का प्रवेश द्वारा मार्ग-सूचक पट्ट, सद्वाक्य युक्त फलक आदि की व्यवस्था।

उपरोक्त करणीय कार्यों के क्रमशः क्रियान्वयन से समग्र ग्राम-विकास-संकल्पना को साकार किया जा सकता है। इसके कारण ग्राम एक कुटुम्ब संकल्पना को साकार करने का कार्य ग्राम के प्रत्येक परिवार में प्रारम्भ होना चाहिए। इसे कुटुम्ब प्रबोधन कहते हैं। जो हम ग्राम में देखना चाहते हैं उसकी प्रयोग व आचरण भूमि घर को बनाना पड़ेगा। ❑

ग्राम विकास और राष्ट्रोत्थान

प्रो. रसाल सिंह

अधिष्ठाता,
छात्र कल्याण, जम्मू
केन्द्रीय विश्वविद्यालय

किसी भी व्यक्ति का उत्थान या उन्नति तभी संभव होती है, जबकि आर्थिक के साथ-साथ उसकी आत्मिक उन्नति भी हो। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि किसी राष्ट्र की उन्नति की कसौटी क्या हो सकती है? कदाचित् किसी राष्ट्र की उन्नति भी उसकी आत्मिक-उन्नति पर निर्भर है। भारत की उन्नति के विषय में चिंतन करने से पहले भारत की आत्मा का बोध आवश्यक है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय इसके लिए 'चिति' और 'विराट' जैसे सांस्कृतिक पदों का प्रयोग करते हैं। शताब्दियों से हम यह सुनते आ रहे हैं कि भारत 'गाँवों का देश' है। कृषि-व्यवस्था उसका मेरुदंड है। 'मार्कंडेय पुराण' में भारत के गाँवों के विषय में कहा गया है कि- 'जहाँ कृषि कार्य किया जाता है, एवं जहाँ कृषि क्षेत्र समूह है, वह गाँव है।' इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि भारत के गाँव ही उसकी आत्मा हैं। महात्मा गाँधी भी कहा करते थे कि वास्तविक भारत का दर्शन गाँवों में ही सम्भव है, जहाँ भारत की आत्मा बसी हुई है। अत: भारत राष्ट्र के उत्थान या उसकी आत्मिक-उन्नति को उसके ग्राम्य-जीवन की उन्नति, उसके ग्रामीण समाज की उन्नति से ही जाँचा-परखा जा सकता है। ग्राम्य-जीवन की उन्नति को ही हम आधुनिक शब्दावली में 'ग्राम विकास' कहते हैं। 'ग्राम विकास' का अर्थ 'ग्राम्य-जीवन का चहुँमुखी विकास' माना जाना चाहिए। ग्राम विकास की अवधारणा उस विकास की ओर संकेत करती है जहाँ ग्रामीणजनों का केवल सामाजिक-आर्थिक विकास ही न हो, अपितु शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास भी संभव हो। जब गांव और ग्रामीणजन स्वावलंबी बनें। जहाँ न सिर्फ सबके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार के अवसर हों, बल्कि समरसता और सौहार्द का वातावरण भी हो।

विश्व बैंक ने ग्राम विकास की आधुनिक परिभाषा देते हुए कहा है कि 'वह व्यूह रचना जहाँ ग्रामीण जनता का सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो, ग्रामीण विकास कहलाता है।' राबर्ट चेम्बर्स के अनुसार, 'ग्रामीण विकास एक पद्धति है; जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन और गरीब लोगों की सहायता की जाती है, जिससे अधिक लाभों की पूर्ति और नियंत्रण से ग्रामीण विकास हो सके। लघु कृषक, सीमांत कृषक, खेतिहर मजदूर और श्रमिक वर्ग के लोग इसमें शामिल किए जाते हैं।' सियर्स कहते हैं कि 'ग्रामीण विकास आर्थिक क्षेत्र के सभी पहलुओं में अधिक उत्पादन प्राप्त करता है। इस उत्पादन का जनसंख्या के अधिक लोगों में इस प्रकार वितरण सुनिश्चित करना जिससे वे जीवन में गुणवत्ता उत्पन्न कर सकें। यह मानव व्यक्तित्व की क्षमता की अनुभूति है।' रोजर्स की धारणा है कि 'ग्रामीण विकास एक प्रकार का सामाजिक परिवर्तन है जिसमें ग्रामीण सामाजिक प्रणाली में नए विचार प्रस्तावित कर आधुनिक उत्पादन विधि और उन्नत सामाजिक संगठन के प्रति-व्यक्ति अधिक आय और उच्च जीवन स्तर उत्पन्न हो।' इन परिभाषाओं में अधिक बल आर्थिक-विकास पर दिया गया है। ये परिभाषाएँ

पश्चिमी देशों की ग्राम विकास की संकल्पना को सामने रखती हैं। किंतु एक प्रश्न है कि क्या हम इन संकल्पनाओं के आधार पर भारत के ग्राम विकास की रूपरेखा तय कर सकते हैं? निश्चित रूप से इसका उत्तर नकारात्मक है। इसका कारण यह है कि ग्राम विकास की इन परिभाषाओं में राष्ट्रोत्थान की बहु-आयामी संकल्पना का अभाव है। पश्चिम की अवधारणाएँ खंडित विचारों को महत्त्व देती हैं। तदनुसार ग्राम विकास की इन परिभाषाओं में समग्र,संतुलित और सतत विकास की भावना सन्निहित नहीं है।

भारत के संदर्भ में ग्राम विकास की संकल्पना को समझना है, तो निश्चित रूप से हमें महात्मा गाँधी के 'ग्राम-स्वराज' की अवधारणा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय की 'अंत्योदय' की संकल्पना व एकात्म मानव-दर्शन और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की आत्मनिर्भर भारत परियोजना को समझकर उन पर अमल करना होगा। हम यदि विकास के मूलतत्व को गहराई एवं गंभीरता से समझने का प्रयत्न करें, तो हम पाते हैं कि विकास का अर्थ केवल आर्थिक सशक्तीकरण नहीं है। केवल भौतिक सुख-सुविधाएँ एकत्रित करने मात्र से हम विकसित नहीं कहे जा सकते। यदि औपनिवेशिक शासन से पहले के ग्रामीण जीवन का अध्ययन किया जाए, तो हम आज की और पूर्ववर्ती जीवन-शैली और जीवन-स्तर को समझ सकेंगे। आज भले ही ढाँचागत विकास ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है, किन्तु प्राचीन काल में सहभागिता और समरसता अर्थात् एक-दूसरे का सहयोग कर कार्य संपादित करने की सहकार-प्रवृति ग्रामीण समाज की भावना एवं संवेदना का प्राणीभूत तत्त्व थी। वह कृषि कार्य हो, कोई सामाजिक-सांस्कृतिक आयोजन हो, या अपने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग-उपभोग या प्रबंधन अथवा संरक्षण का कार्य हो, ग्रामीण लोग सामूहिक रूप से इन कार्यों को संपन्न किया करते थे।

यही नहीं, उनकी अपनी सामाजिक संस्थाओं में न्याय की व्यवस्था भी शामिल थी, जिस पर उनकी गहरी आस्था थी।

आज भले ही ढाँचागत विकास ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है, किन्तु प्राचीन काल में सहभागिता और समरसता अर्थात् एक-दूसरे का सहयोग कर कार्य संपादित करने की सहकारी प्रवृति ग्रामीण समाज की भावना एवं संवेदना का प्राणीभूत तत्त्व थी। वह कृषि कार्य हो, कोई सामाजिक-सांस्कृतिक आयोजन हो, या अपने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग-उपभोग या प्रबंधन अथवा संरक्षण का कार्य हो, ग्रामीण लोग सामूहिक रूप से इन कार्यों को संपन्न किया करते थे।

किंतु धीरे-धीरे लोगों में विकास की अवधारणा बदलने लगी और लोगों की आवश्यकताएँ धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उनका झुकाव भौतिक विकास की ओर होने लगा। अब विकास का अर्थ लंबी-लंबी सड़कों का संजाल, बड़े-बड़े बाँध, पॉवर हाउस, बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें और अत्याधुनिक सुख-सुविधा के तमाम साधनों के संचय आदि से माना जाने लगा है। सम्पूर्ण विश्व में विकास के नाम पर ढाँचागत भौतिक विकास की अंधदौड़ प्रारंभ हो गई है। इस दौड़ में मानव का सर्वांगीण विकास कहीं विलुप्त हो गया है। वास्तव में, ढाँचागत विकास ही सम्पूर्ण विकास नहीं है, अपितु यह विकास का केवल एक पहलू है। विकास का वास्तविक अर्थ केवल लोगों को आर्थिक अवसर प्रदान करने का नाम भी नहीं है। केवल निर्धनता समाप्त कर देने या दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देना मात्र ही संपूर्ण विकास नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार आर्थिक विकास भी विकास का एक आयाम ही है। सतत् एवं संतुलित विकास के लिए यह आवश्यक है कि विकास का केन्द्र-बिन्दु मानव हो। मानव के अन्तर्निहित गुणों व क्षमताओं का विकास कर उनके अस्तित्व, क्षमता, कौशल व ज्ञान को मान्यता देना, उन्हें अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करना, लोगों की सोचने-समझने व उनकी रचनात्मक शक्ति को

बढ़ाना, उनमें उनके परिवेश एवं वातावरण का विश्लेषण करने की क्षमता जाग्रत करना, समाज में उनको उनकी पहचान दिलाना व उन्हें सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सशक्तता के अवसर प्रदान करना ही वास्तविक विकास कहा जा सकता है। किंतु, इन समस्त प्रक्रियाओं के साथ-साथ मानव व प्रकृति के बीच उचित सामंजस्य व संतुलन बनाना विकास की पहली शर्त है। वास्तविक विकास केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही नहीं है अपितु भविष्य की आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना है। राष्ट्रोत्थान की संकल्पना को विकास के इन सोपानों से ही साकार किया जा सकता है। ये समस्त विचार गाँधी और दीनदयाल जी के ग्राम-विकास के चिंतन में समाहित हैं।

नि:संदेह भारत गाँवों का देश है। भारत की अधिकतम जनता गाँवों में निवास करती है। इस आत्मा की उन्नति या उत्थान ही सच्चे अर्थों में राष्ट्रोत्थान के संकल्प को पूरा कर सकता है। सदियों से भारत के गाँव उन्नत और समृद्ध रहे हैं। ग्रामीण कृषक कृषि पर गर्व का अनुभव करते थे और संतुष्ट थे। इसीलिए कहावत भी बनी-'उत्तम खेती, मध्यम बान, अधम चाकरी भीख समान' गाँवों में छोटा-मोटा व्यापार और लघु/कुटीर उद्योग फलते-फूलते थे। लोग सुखी और संपन्न थे। भारत के गाँवों में स्वर्ग बसता था। इसीलिए हिंदी के राष्ट्रकवि ग्राम्य-जीवन की महिमा का वर्णन करते हुए बरबस लिख बैठते हैं- **'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे। थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है?'** हालाँकि, वे अपनी कविता में 'जगती कहीं ज्ञान की ज्योति, शिक्षा की यदि कमी न होती' कहकर ग्राम्य-विकास में शिक्षा के अभाव की अड़चन को रेखांकित करना भी नहीं भूलते। समयांतराल में विकास की सारी नीतियाँ नगर विकास पर केंद्रित होती गईं और गाँव पिछड़ते गए। भारत के गाँवों की दशा अब दयनीय है। इसका मुख्य कारण केवल अशिक्षा ही नहीं, अपितु ग्राम विकास की हवाई आधुनिक अवधारणाएँ और नीतियाँ भी हैं। अशिक्षित होने के कारण ग्रामीण लोगों में अत्यधिक अंधविश्वास और रूढ़िवाद तो हैं ही जो ग्राम विकास में बाधा हैं, इसके अतिरिक्त पिछले सत्तर वर्षों की ग्राम विकास की सरकारी नीतियों ने भी

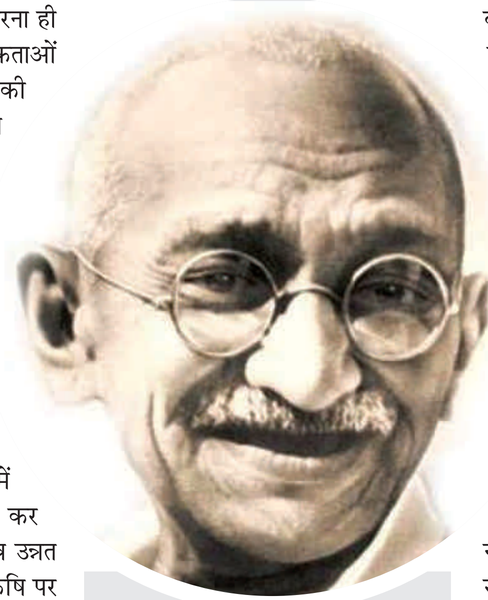

वास्तविक विकास केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही नहीं है अपितु भविष्य की आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना है। राष्ट्रोत्थान की संकल्पना को विकास के इन सोपानों से ही साकार किया जा सकता है। ये समस्त विचार गाँधी और दीनदयाल जी के ग्राम-विकास के चिंतन में समाहित हैं।

गाँवों और ग्राम्य-जीवन को रसातल में पहुँचा दिया है। आज भी गाँवों में साहूकारों, जमींदारों और व्यापारियों का अनावश्यक दबदबा है। किसान प्रकृति पर निर्भर करते हैं और 'दैव-मातृका कृषि' पर निर्भरता के कारण सदैव सूखा तथा बाढ़ की चपेट में आकर नुकसान उठाते रहते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय 'अदैवमातृका कृषि' अर्थात सिंचाई की व्यवस्थायुक्त कृषि के हिमायती थे। महँगी ब्याज दर के ऋण में फँसे, तंगी में जीते, छोटे-छोटे झगड़ों को निपटाने के लिए कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाते हुए ये अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं या फिर आत्महत्या कर बैठते हैं। गाँव में कृषि कार्य पर पूरी तरह निर्भरता अब पूरे परिवार की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाती। जनसंख्या के बढ़ाव से जोत निरंतर छोटी हो रही हैं। अत: उनमें कृषि के आधुनिक साधनों का प्रयोग नहीं हो पाता। गाँववासी भी अब नगरों की चकाचौंध से प्रभावित होने लगे हैं। ग्रामीण युवा अब गाँवों में नहीं रहना चाहता। वह शिक्षा, नौकरी और सुख-सुविधाओं का पीछा करते हुए नगर पहुँचना चाहता है। विस्थापन भारत के ग्राम विकास और राष्ट्रोत्थान में गंभीर समस्या है। महात्मा गाँधी ने इन समस्याओं को बहुत पहले ही भाँप लिया था। यही कारण है कि उन्होंने 'ग्राम-स्वराज' की संकल्पना प्रस्तुत की।

गाँधी जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में 'ग्राम-स्वराज' को लेकर गंभीर चिंतन किया है। उनके प्रिय विषय थे सांप्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, ग्राम विकास, शिक्षा, लघु उद्योग, हस्तशिल्प, खादी, प्राकृतिक चिकित्सा, कृषि विकास, नशाबंदी, राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी तथा विकेन्द्रित अर्थनीति। उन्होंने ग्राम स्वराज के तहत जो ग्राम्य जीवन के विकास की अवधारणा प्रस्तुत की वह राष्ट्रोत्थान की कुंजी है। दुर्भाग्य है कि हमने इस कुंजी से ग्राम विकास में आने वाली समस्या रूपी ताले को अब

तक न खोलने का प्रयत्न किया है। आज हम जिस संक्रमण काल से गुजर रहे हैं और राष्ट्रोत्थान के लक्ष्य के सामने जो भयावह एवं विषम परिस्थितियाँ और चुनौतियाँ हैं, ऐसे में गाँधी के विचारों की अनदेखी नहीं की जा सकती। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में गाँधी जी ने विकेंद्रीकरण, आत्मनिर्भरता, स्वदेशी, सीमित उत्पादन और संयमित उपभोग, ग्राम-शिल्प एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने की देशज दृष्टि दी।

उनकी धारणा थी कि उत्पादन और सेवा-संसाधनों का उपयोग व्यक्तिगत उपभोग के लिए नहीं, अपितु सभी की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिए। गाँधी जी ने जिस स्वावलंबी, सशक्त और समरस ग्रामीण भारत का सपना संजोया था, उसमें सभी के लिए काम, रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ जल, सर्वोदय एवं सद्भाव की चिंता थी। गाँधी जी चाहते थे कि हर गाँव में खेती हो, किसान हों, बढ़ई हों, कुम्हार हों, सूत कातने वाले हों, दर्जी हों, तेल पेरने वाले हों ताकि ग्रामवासियों को अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ लेने के लिए बाहर न जाना पड़े या बड़े-बड़े देशी-विदेशी कॉर्पोरेट घरानों या एजेंटों पर निर्भर न होना पड़े। गाँधी जी का मानना था कि आर्थिक प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार का अवसर प्राप्त हो, किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य मिल सके, मजदूर अपने गाँवों को छोड़कर प्रवासी बनने के लिए बाध्य न हों। महात्मा गाँधी ने इन समस्याओं के प्रति लोगों का ध्यान निरंतर 'स्वदेशी' आन्दोलन के माध्यम से खींचने का प्रयत्न किया है। गाँधी जी निरंतर इस बात पर बल देते थे कि भारत की आत्मा भारत के गाँव हैं। अत: भारत का विकास अर्थात् राष्ट्रोत्थान की संकल्पना गाँवों के विकास से ही संभव हो सकती है। इसलिए आवश्यकता है सरकार के ग्रामीण विकास की नीतियों एवं अर्थनीतियों में उस तालमेल की जो गाँधी जी और पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित स्वदेशी, स्वावलंबन और स्वशासन के सिद्धांतों से मेल खाती हों।

गाँधी जी और पंडित जी की ग्राम विकास की अवधारणा श्रम को महत्त्व देती है। भारत की प्रमुख समस्याओं जैसे बेकारी और अर्द्ध-बेकारी के संदर्भ में

उन्होंने श्रम-क्षमता व श्रम-साधनों, रोजगार के अवसरों की आवश्यकता पर बल दिया है। वे श्रम को सम्मान की दृष्टि से देखते थे और उनकी धारणा थी कि प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना चाहिए। व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनिवार्यत: शारीरिक श्रम करना चाहिए। अकर्मण्य और आश्रित होना सबसे बड़ा पाप है। उनका दृढ़ मत था कि जब तक भारत के गाँवों की दशा ठीक नहीं होगी, तब तक राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता। राष्ट्रोत्थान नहीं हो सकता। वे गाँवों की दशा सुधार कर पंक्ति में खड़े अंतिम व्यक्ति का सशक्तीकरण करना चाहते थे। उसे मुख्यधारा में सम्मिलित करना चाहते थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी गाँधी जी के 'ग्राम-स्वराज' की अवधारणा से बेहद प्रभावित थे। यही कारण है कि उन्होंने भी ग्राम विकास के संदर्भ में सबसे अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति की चिंता करते हुए 'अन्त्योदय' और 'ग्रामोदय' की संकल्पना प्रस्तुत की ताकि भारत को एक समर्थ व सशक्त राष्ट्र बनाया जा सके। उनके अनुसार, 'अन्त्योदय' का अर्थ है- 'समाज / राष्ट्र के सबसे निचले पायदान पर स्थित व्यक्ति का विकास। निचले पायदान पर स्थित सभी व्यक्तियों का संतुलित रूप से विकास जिससे राष्ट्रीय कल्याण में उनकी सहभागिता सुनिश्चित हो सके। वह अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करने में सक्षम बन सके।' गाँधी जी की भांति उनकी भी धारणा स्पष्ट थी कि भारत गाँवों का देश है जिसकी अधिक आबादी गाँवों में निवास करती है।

इसलिए देश की इस ग्रामीण जनता के समग्र उत्थान के बिना एक उन्नत राष्ट्र के रूप में भारत कभी स्थापित नहीं हो सकता। आजतक भी प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा आदि) के फलस्वरूप किसानों को भारी क्षति उठानी पड़ती है और फसल नष्ट हो जाने पर वे आत्महत्या करने को विवश हो जाते हैं। आज भी भारत के किसानों की स्थिति यह है कि वह अपने खून-पसीने से सींची गयी फसल की लागत भी नहीं निकाल पाते और सरकारों से न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। गाँधी जी और दीनदयाल जी को भारतीय किसानों के भविष्य को लेकर गंभीर चिंता थी। यही कारण है कि दोनों ने अपनी अपनी संकल्पनाओं में भारत के गाँवों के विकास को भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप कार्यान्वित करने की पहल की है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि पिछली सरकारों द्वारा निरंतर इन दोनों के चिंतन को नकारा गया और ग्राम विकास की उथली योजनाएँ लागू कर उन्नत परिणाम की अपेक्षा की गयी। आज स्थिति यह है कि आज भी भारत के गाँवों में बसने वाला, किसान, खेतिहर-मजदूर और आम ग्रामीण, युवा-बेरोजगार स्वतंत्र भारत के सुनहले सपने की परिधि में शामिल नहीं है।

गाँधी जी ने भारत के आर्थिक जीवन में गाँवों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि 'जनसंख्या का अस्सी प्रतिशत हिस्सा जो हमारे खेतों में काम कर रहा है तथा जिसे व्यवहारत: साल में कम से कम चार महीने के लिए कोई काम नहीं है और जो भुखमरी की सीमा रेखा पर जी रहा है, उसे कृषि के पूरक के रूप में कम से कम चार महीने सरल उद्योग की आवश्यकता होगी।' यही कारण है कि उन्होंने गाँवों में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया ताकि कोई भी खेतिहर-मजदूर भुखमरी का शिकार न हो और इन उद्योगों में रोजगार पाकर वह अपनी खेती पर भी ध्यान दे सके। इतना ही नहीं, शहर गाँवों के शोषक न बन जाएँ, इसके लिए गाँधी जी ने 'ग्रामवाद' की अवधारणा भी सामने रखी। उन्होंने कहा कि गाँवों को 'मेरी योजना के अंतर्गत शहरों द्वारा उन चीजों का उत्पादन नहीं करने दिया जाएगा जिन्हें गाँव उतने ही अच्छे ढँग से उत्पादित कर सकते हैं। शहरों का उचित कार्य यह होता है कि वे गाँव की वस्तुओं को उठाने के लिए कार्य करें।' हमारे सामने गुजरात में 'अमूल' सहकारी-उत्पादन का एक आदर्श उदाहरण है जहाँ किसान महिलाओं ने पूरे भारतवर्ष में ही नहीं, विदेशों में भी अपना लोहा मनवा दिया है। किंतु, वर्तमान में शहर और गाँवों के मध्य कितना असंतुलन है, यह बात सबके समक्ष है। दूध, सब्जियाँ, अनाज आदि अनेक वस्तुओं का उत्पादन कर ग्रामीण कृषक जब शहरों में अपनी वस्तुएँ बेचने जाते हैं तो उन्हें उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। बिचौलियों के शोषण और शहरी समाज की उदासीनता चिंता और चिन्तन का विषय है।

यही कारण है कि गाँधी जी यह चाहते थे कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था यथासंभव आत्मनिर्भर हो। उत्पादन और उपभोग का विकेंद्रीकरण हो। ग्रामीण और मंडियों के बीच सन्निकट व्यक्तिगत संबंध कायम हों। भारत के गाँवों में प्रशिक्षण, शोध तथा विकास के कार्यक्रम, तकनीकी सहायता, प्रोत्साहन आदि को छोड़कर ग्रामीण किसान, खेतिहर-मजदूर सरकार पर कम से कम निर्भर रहें और कार्य की व्यवस्था के लिए सहकारी संस्थाओं का गठन किया जाए। गाँधी जी का विचार था कि केवल उत्पादन में अभिवृद्धि और उसके उचित वितरण मात्र से ही समस्या नहीं सुलझ सकती; अपितु गाँवों के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जाना चाहिए। उनका मानना था कि गाँवों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का प्रभाव तभी स्थाई हो सकेगा जब समग्र सेवा को ग्रामोद्योग या ग्राम पुनर्निर्माण के व्यापक कार्यक्रम के एक अंग के रूप में चलाया जाता है। यह तभी संभव है जब किसी विशेष क्षेत्र और वहाँ के रहने वाले लोगों का विकेंद्रित आर्थिक विकास हो। इसी को गाँधी जी 'समग्र सेवा' मानते थे। वे संपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था का नए आधार पर पुनर्गठन और गाँवों का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। आज भारत को यदि एक उन्नत राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान बनानी है तो सरकार को अपनी ग्राम विकास की योजनाओं में गाँधी जी और पंडित जी के इन विचारों को अपनाना ही पड़ेगा। क्योंकि गाँवों का उत्थान होगा, तभी राष्ट्रोत्थान होगा।

एक सच्चे, सार्थक और सशक्त लोकतंत्र का अर्थ है सबकी सार्थक भागीदारी। लोकतंत्र का संबंध उत्तरदायित्व से भी है। जीवंत और सशक्त स्थानीय शासन सबकी सक्रिय भागीदारी और उद्देश्यपूर्ण उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। इसी विचार को केंद्र में रखकर गाँधी जी ने अपनी 'ग्राम-स्वराज' की अवधारणा में भारत के गाँवों में पंचायती राज या स्थानीय शासन व्यवस्था स्थापित करने की वकालत की थी। गाँधी जी का मानना था कि जो कार्य स्थानीय स्तर पर संपादित किए जा सकते हैं, उन कार्यों को उस ग्रामीण क्षेत्र के स्थानीय लोगों एवं उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में दे देना चाहिए। एक लोकतंत्र के सशक्तीकरण के लिए भी ऐसा किया जाना अत्यंत अनिवार्य है। प्रादेशिक अथवा केंद्र सरकार से कहीं अधिक परिचित या सहज गाँवों की आम जनता स्थानीय शासन और प्रतिनिधियों से होती है। स्थानीय शासन क्या कर रहा है और क्या करने में असफल रहा है। आम जनता का इस प्रश्न से कहीं अधिक सरोकार होता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि इस बात का सीधा प्रभाव उसके दैनंदिन जीवन पर पड़ता है। इस प्रकार स्थानीय शासन को शक्तिशाली और अधिकार संपन्न बनाना लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अधिक शक्तिशाली व सर्व-समावेशी बनाने के समान है। यही कारण है कि संविधान में 73वाँ संशोधन कर त्रि-स्तरीय पंचायती राज को लागू भी किया गया। किंतु आज यह व्यवस्था गाँवों को सशक्त बनाने व ग्राम विकास में कितनी सहायक हो रही है और अभी क्या करने की आवश्यकता है, इसका सामयिक मूल्याङ्कन होते रहना चाहिए। तभी जाकर हम ग्राम विकास और राष्ट्रोत्थान की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकते हैं। ❑

हजारों वर्षों तक विदेशी आक्रांताओं के निरन्तर प्रहारों ने स्वनिर्भरता के आत्मसम्मान को लगातार चोट पहुँचाई जिस कारण अस्थाई रूप से परतन्त्रता पर निर्भरता का विश्वास बनने लगा। 18वीं सदी के पश्चात् 'स्वदेशी' शब्द का उद्गार बांग्लादेश विभाजन के साथ ब्रिटिश तंत्र के प्रति भारतवासियों ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता की ललकार दी जिसे उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय उत्सवों की जनसामूहिकता से जोश भरते हुए विदेशी सामानों का बहिष्कार और वन्दे मान्तरम् गान का पुरोधा भी मातृभूमि के स्वदेशी का भाव ही था।

ग्रामीण जीवन मूल्य, विमूल्य और आधुनिकता

डॉ. रेखा यादव
सहआचार्य दर्शनशास्त्र,
बाबू शोभाराम राजकीय कला
महाविद्यालय, अलवर

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। कस्बों और उपनगरीय विकास के निरन्तर विस्तार के बाद यह प्रश्न उठना सामयिक है कि क्या अब भी इसे गाँवों का देश कहना समीचीन है?

यहाँ प्रश्न उठता है कि गाँव भौगोलिक पहचान है कि सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान है?

यदि गाँव के संबंध में विकास और आधुनिकता की बात की जाय तो इसका सन्दर्भ सामाजिक-सांस्कृतिक ही है क्योंकि विकास का विचार मानव केंद्रित मूल्यों से संबंधित है।

पश्चिम में पर्यावरणीय नैतिकता की बात 1960 के बाद 'लिमिट ऑफ ग्रोथ' जैसे लेखों के माध्यम से की गई और संपोषणीय विकास की मानवकेंद्रित अवधारणा पर ही पहुँच पाया है। पश्चिम की आधुनिक समाजवादी क्रांति में जीवन के सम्मान, गरिमा के जो प्रश्न है सर्वथा उचित है परन्तु प्रकृति के प्रति जो भोगवादी विचार है वह उनके धर्म एवं संस्कृति में भी सहज आ गये हैं। यह कोई गर्वोक्ति दर्शाने का प्रयास भर नहीं है अपितु शोधपरक निष्कर्ष हैं कि भारत की संस्कृति में प्रकृति भोग और अपवर्ग दोनों का साधन स्वीकारी गई है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिन्द स्वराज में जिस शैतानी सभ्यता से बचने की सलाह दी है वह पश्चिमी सभ्यता की विकास और आधुनिकता की दृष्टि है। गांधी जी जिस मार्ग को ईश्वर की ओर बढ़ने के लिये उपयुक्त कह रहे हैं वह भारतीय ग्रामीण संस्कृति है। परन्तु आज हमने जो एकदेशीय सोच वैश्विक स्तर पर अपना ली है उसने गाँवों को विकास से ज्यादा अपसंस्कृति उधार दे दी है।

आज भारत में प्रश्न न उठाने की बात का बड़ा प्रचार किया जाता है परन्तु प्रश्न उठाना और समाधान न देना लोगों को उनके समाज और संस्कृति से विस्थापित कर रहा है। महात्मा गाँधी जिस सब्र और सन्तोष के साथ रचनात्मक कार्य और सेवा संघ का स्वप्न देख रहे थे उनकी हत्या ने भारत की सच्ची आत्मा की आवाज को मौन कर दिया। ऐसा नहीं कह सकते कि भारत में और कोई भारतीय संस्कृति और ग्रामीण सभ्यता का हितैषी नहीं था, नि:संदेह बहुत सी संस्थाएँ कार्य कर रही थी। सरकारी-गैर सरकारी अनुदान भी मिले परन्तु गांधी जी हमारे आजादी के आन्दोलन के नायक थे लोगों में उनका प्रभाव था और उनकी राजनैतिक हैसियत को दरकिनार नहीं किया जा सकता था। आज हम जिस ग्रामीण विकास की बात कर रहे हैं और गाँव शहर

बनाने को लालायित हो रहे हैं वह गाँव के मूल्यों पर घात है। गांधी जी गाँवों को सुराज देना चाहते थे। उनके मूल्य और विमूल्यों का भेद समझाने का प्रयास कर रहे थे परन्तु पश्चिमी सभ्यता के पक्षधर उन्हें समझ नहीं पाये।

भारत का दुर्भाग्य यह रहा कि जो गांधी जी की दृष्टि नहीं समझ पाये वे उनके उतराधिकारी घोषित हो गये और जो गांधीवादी मूल्यों के अनुकूल संयम, सादगी और आस्थावान जीवन की बात करते थे पिछड़े घोषित कर दिये गए।

गांधी जी जैन दर्शन के अहिंसा परमो धर्म की वकालत करते थे उसमें साध्य का शुभत्व साधन की पवित्रता से जुड़ा था जिसका मार्क्स से मूलगामी भेद था। भारत के गाँव शान्ति और सादगी के परिचायक हैं वहाँ जड़ता, रूढ़ि और अन्धविश्वास से इन्कार नहीं किया जा सकता परन्तु बढ़ती हुई हिंसा, आक्रामकता, अपराध, अश्लीलता का प्रसार और नास्तिकता न तो भारतीय तत्त्व हैं न ही गांधी जी की दृष्टि। इन विकृतियों के साथ इन्हें भोगवादी और लालची सोच के साथ स्वार्थी, नकारात्मक, विध्वंसक बनाने का कार्य भी किया जा रहा है जिसमें न तो कार्ल मार्क्स की मानवता है न ही महात्मा गांधी का रामराज्य।

सादगी, सरलता, अपव्यय से बचना, सामूहिकता में रहना, सन्तोषी प्रवृत्ति, धीरज और प्रकृति के प्रति आदरमिश्रित आस्था ग्रामीण क्षेत्र के मूल्य हैं जो नगरों में रोजगार की तलाश में आये लोगों मे भी नजर आते हैं। परन्तु अन्धविश्वास, जड़ता, बौद्धिक और सौंदर्यपरक बोध की कमी का व्यवहार विमूल्य है। नगरीय जीवन उन्नत, कला एवं संस्कृति के पारखी रूप में जाना जाना चाहिए परन्तु आज ये विकृति और अमानवीय व्यवहार के परिचायक बन गए हैं इस प्रकार आधुनिक मूल्य और आधुनिकता किसे कहा जाय? यह सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न है।

नगर और ग्रामीण जीवन व्यक्ति की इच्छा और जीवन जीने की पसन्द का विषय है। नगरों की गतिशीलता, ऊँची इमारतें, भव्य बाजार, सुख सुविधाओं से युक्त अस्पताल, विद्यालय सभी को अच्छे लगते हैं यह मानना भी दुराग्रह हो सकता है। किसी को अपने जीवन जीने का सरल तरीका भी अच्छा लग सकता है। गरीबी अभिशाप नहीं है समाज का संवेदनशील नहीं होना मानवीय त्रासदी है। भारतीय चिन्तकों की पहचान सिर्फ भारत में जन्म लेने से नहीं है भारतीय मूल्यों की समझ रखने से भी है।

आधुनिकता का एकदेशीय अर्थ पश्चिमी ज्ञान का प्रभाव नहीं हो सकता। हम अपने देशज अर्थ में भी आधुनिक हो सकते हैं यदि बढ़ते अर्थ के प्रभाव और विलासिता से मुक्त होने की कोशिश आरम्भ कर दें। ❑

डॉ. शिव शरण कौशिक
सह आचार्य, हिन्दी
राज. महा. राजगढ़,
अलवर (राज.)

सामाजिक परिवर्तन और भारतीय ग्राम

परिवर्तन प्रकृति और मानव जीवन का शाश्वत मूल्य है। सदियों से देश और दुनिया के भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्यान्य क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। ये परिवर्तन संभवतया सकारात्मक भी हो सकते हैं और नकारात्मक भी। परिवर्तन के प्रति आकर्षण और विकर्षण, दोनों ही उत्पन्न होते रहे हैं। यदि यह परिवर्तन मानवीय जीवन को उन्नति की ओर ले जाते हैं, या यूं कहें कि मानवीय जीवन में आई मुश्किलों को हल करते हैं, तब यह परिवर्तन अनुकूल और सकारात्मक कहे जाते हैं। भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों को अलग-अलग काल खंडों में देखा-परखा जाता रहा है। समाज के विभिन्न आंतरिक संबंध-सूत्रों को भारतीय ग्राम संरचना के मैत्री-भाव, बंधु-भाव, सहयोग-भाव और करुणा-भाव में देखा जा सकता है। सद्भाव और मनुष्य-भाव की यह सभी विशेषताएँ भारतीय ग्रामीण समाज की धुरी रहे हैं। ग्राम-समाज का यह स्वरूप अखिल भारतीय स्तर पर समान रूप से व्याप्त रहा है और इसे सभी प्रांतों में अनुभव किया जाता रहा है। अभावों में सुख की अनुभूति करना अर्थात् कम से कम संसाधनों में जीवन को उत्कृष्ट और समुन्नत बनाकर चरम संतुष्टि प्राप्त करने की भावना ही इसके केंद्र में रही है। यह दृष्टि-संपन्नता भारत में देशव्यापी थी। कला और संस्कृति की दृष्टि से भी भारतीय ग्राम-समाज संपन्न और समृद्ध रहा है। अनेक लोक-रंग तथा लोक-काव्यधाराएँ परस्पर घुल-मिलकर इसमें व्याप्त रही हैं। कृषि, हथकरघा, लघु एवं कुटीर उद्योग, काष्ठ कला, प्रस्तर कला, धार्मिक आयोजन, सांस्कृतिक समारोह आदि का प्रचुर मात्रा में विस्तार हम देखते आए हैं जिनसे ग्राम्य-जन के जीवन का परिष्कार तथा जीवन-स्तर में अभिवृद्धि होती रही है। एक समय था जब कहा जाता था कि यदि मनुष्य जीवन का व्यापक प्रेम और सौंदर्य यदि कहीं देखना है तो वह भारत के ग्राम-समाज में ही देखा जा सकता है। हमारे गाँव के लोग ही थे जिन्होंने वन-उपवन, नदी-पर्वत तथा प्रकृति के सभी उपादानों की रक्षा की। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास कमोबेश भारतीय ग्राम-समाज का इतिहास ही है।

वर्तमान में विकसित और प्रगतिशील भारत की कल्पना को गाँव की प्रगतिशीलता के बिना साकार नहीं किया जा सकता। आधुनिकता के इस दौर में नगरीय विकास के सारे चरण, सारे तकनीकी संसाधन तथा समस्त भौतिक संसाधनों का विस्तार और विकास गाँव में भी परम आवश्यक है। आज गाँव के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अत्यधिक काम करने की आवश्यकता है। पानी के अभाव में सूखे की स्थिति को देखते हुए जल संग्रहण की दृष्टि से जन-जन को संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। इससे न केवल खाद्यान्न, दलहन, सब्जी, दुग्ध, फल आदि के क्षेत्रों में कल्पनातीत वृद्धि होगी, बल्कि साथ ही साथ ग्रामीण-जनों के जीवन स्तर में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत की आजादी के आंदोलन की अनेक घटनाओं का नेतृत्व ग्रामीण लोगों ने ही किया था। स्वतंत्रता सेनानियों में से अधिकांश की पृष्ठभूमि ग्रामीण थी जिनमें निरापद देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। गांधी जी की हिंद-स्वराज की कल्पना भी ग्राम-स्वराज की ही कल्पना है जिसे पहले हम अंत्योदय में तथा वर्तमान में आत्मनिर्भरता के विभिन्न स्तरों में देख पा रहे हैं। यह सच्चाई है कि जब तक हमारे गाँव आर्थिक रूप से, शैक्षिक रूप से, भौतिक संसाधनों की दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं होंगे तब तक देश का समग्र विकास नहीं होगा। गरीबी व बेरोजगारी से मुक्त शिक्षित एवं स्वास्थ्य-संपन्न तथा कानूनी विवादों के प्रति जागरूक ग्राम्य-जन की कल्पना ही ग्राम स्वराज की कल्पना है।

आज जिस प्रदूषण की विकट समस्या से पूरा विश्व जूझ रहा है वह भी गाँव में नगण्य है। इसलिए सरकारों को चाहिए कि आज गाँव में अधिकाधिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था, चिकित्सा, रोजगार बिजली-सड़क-पानी आदि की सुदृढ़ व्यवस्था करें। तभी हमारे गाँव समुन्नत होंगे तथा हमारी जन-संस्कृति का समुचित विकास हो सकेगा। इसी से तथाकथित 'इंडिया' और भारत के बीच का अंतराल भी मिट सकेगा। आज ग्रामीण जीवन में भी अनेक नवाचार होते दिखाई दे रहे हैं और इसकी भविष्य में प्रबल संभावना है। कृषि के क्षेत्र में ही उन्नत फसलों, कृषि उपकरणों तथा विभिन्न खाद्यान्नों के उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है।

भारतीय ग्रामीण समुदाय में जो परिवर्तन हुए हैं उनके परिणामस्वरूप आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और धार्मिक क्षेत्रों में अधिक प्रभाव पड़ा है। पिछले कुछ दशकों से ग्रामीण क्षेत्रों में संचार के साधनों में व्यापक सुधार के कारण राष्ट्र से लगाकर ग्राम तक विभिन्न स्तरों पर सर्वव्यापी विकास के परिणाम हमें दिखाई पड़ते हैं। कुछ परिवर्तन ग्रामीण-समाज में हमें सामाजिक दृष्टि से भी देखने को मिले हैं, उनमें लड़के-लड़कियों के विवाह की आयु में उल्लेखनीय वृद्धि होना प्रमुख है, जिससे बाल-विवाह पर रोक लगी है। इसी के साथ धार्मिक व जातिगत आधार पर विभेद में तेजी से कमी आई है। लड़के-लड़कियों की समान रूप से शिक्षा ने ग्रामीण समाज और परिवारों में विकास की एक नई धारा प्रवाहित है। पवित्रता तथा पवित्रता के आधार पर किए जाने वाले अंतर ने आज स्वच्छता का आधार ग्रहण कर लिया है जिससे सामाजिक विभेद के मूलाधार ही बदल गए हैं और समाज में स्वच्छता के प्रति अनिवार्य आकर्षण उत्पन्न हुआ है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि जातिगत ऊँच-नीच का भाव समाप्त अथवा कम होने से पिछड़ी जातियों के शिक्षित युवक-युवतियाँ शहरों की भांति गाँव में भी सम्मान और स्वीकृति पाने लगे हैं। यह भारत की उन्नति का दूरगामी प्रकार है। कृषि के क्षेत्र में किसानों द्वारा की जाने वाली परंपरागत खेती में तुलनात्मक रूप से कम लाभ होता था। अब वैज्ञानिक उपकरणों तथा नई तकनीक के माध्यम से कृषि में उन्नत फसलें और उद्योग केंद्रित फसलों का भी विस्तार होने लगा है। चिकित्सा सुविधाओं में उल्लेखनीय विस्तार और जागरूकता के कारण ग्रामीण-जन स्थानीय झाड़-फूँक तथा भोपों के पाखंड से मुक्त होकर उचित स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने लगे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में नए-नए शिक्षण संस्थान तथा नवाचार सामने आए हैं जिससे गाँव में भी तकनीक के प्रयोग से एक बहुत बड़ा शिक्षित और उन्नतिशील युवा वर्ग तैयार हो रहा है। महत्त्वपूर्ण यह है कि ग्रामीण शिक्षित युवा वर्ग सेना, सुरक्षा, खेलकूद, कृषि, उद्योग, प्रशासनिक सेवा जैसे अधिक महत्त्व के क्षेत्रों में अपने गाँव तथा राष्ट्र के विकास में उल्लेखनीय भागीदारी कर रहा है। यह एक सच्चाई है कि शहरों की तुलना में कठिन परिस्थितियों में पलने बढ़ने वाले ग्रामीण किशोर-युवक मानसिक रूप से अधिक दृढ़ और परिश्रमी होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन ग्रामीण युवक-युवतियों को आगे बढ़ने के समुचित अवसर सुलभ कराए जाएँ। हाँ, आज बढ़ती मशीनी सभ्यता के प्रकट दुर्गुणों की तुलना में सरल और श्रम केंद्रित ग्रामीण जीवन का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है क्योंकि हम सब जानते हैं कि

> **गांधी जी की हिंद-स्वराज की कल्पना भी ग्राम-स्वराज की ही कल्पना है जिसे आज हम आत्मनिर्भरता के विभिन्न स्तरों में देख पा रहे हैं। यह सच्चाई है कि जब तक हमारे गाँव आर्थिक रूप से, शैक्षिक रूप से, भौतिक संसाधनों की दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं होंगे तब तक देश का समग्र विकास नहीं होगा। गरीबी व बेरोजगारी से मुक्त शिक्षित एवं स्वास्थ्य-संपन्न तथा कानूनी विवादों के प्रति जागरूक ग्राम्य-जन की कल्पना ही ग्राम स्वराज की कल्पना है।**

मशीनों से होने वाले विकास का लाभ कुछ लोगों तक ही केंद्रित रहता है जबकि श्रम केंद्रित विकास का लाभ जन-जन तक पहुँचता है। इसलिए हमारे देश में उद्योग धंधों, कल-कारखानों आदि की संरचना का विकास गाँवों तक पहुँचाना चाहिए।

वस्तुतः भारत की संस्कृति ही ग्राम आधारित संस्कृति है। हमारे यहाँ ग्राम की अवधारणा एक परिवार की अवधारणा है। वह एक सजीव, सक्रिय, स्वाबलंबी, सुखी, संपन्न और संस्कार-युक्त इकाई बने, इसकी महती आवश्यकता है।

सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ग्रामीण संस्कृति का अपना महत्त्व है। गाँव में मिलने वाले अनेक वानस्पतिक पेड़-पौधे, सब्जियाँ, पत्ते, मसाले आदि का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण उपयोग है। देशी चिकित्सा पद्धति सस्ती और निरापद होती है जो लोक में उपलब्ध अनुभव और वाचिक ज्ञान-परंपरा पर आधारित होती है, जिसके प्रति पूर्ण विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है।

भारत की प्राचीन ग्राम व्यवस्था में छुआछूत भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं था, यह विदेशी आक्रमण का परिणाम है। हमारे यहाँ गाँव एक पारिवारिक इकाई रहा है। उसमें सभी प्रकार की विधाओं के विज्ञ लोग एक साथ रहते थे, चाहे वह छोटी बड़ी किसी भी जाति या किसी भी वर्ग का व्यक्ति हो, भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं था। गो-संपदा की दृष्टि से भी भारत के गाँव हमेशा से समृद्ध और संपन्न रहे हैं। गो-संपदा भारत के हर परिवार की आर्थिक व्यवस्था का रीढ़ रही है।

हमारे देश की वर्तमान सरकार ने ग्राम केंद्रित दलितों के सर्वतोमुखी उत्थान की अनेक योजनाएँ चलाई हैं, जिससे उनके सामाजिक जीवन स्तर में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है और उनके आर्थिक विकास और जीवन स्तर की वृद्धि का भी मार्ग प्रशस्त हुआ है।

इसलिए निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अगर हमारा गाँव जाग्रत होगा तो देश जाग्रत होगा, साथ ही गाँव का गौरव बढ़ेगा तो देश का गौरव बढ़ेगा। ❑

ग्राम विकास की संकल्पना एवं भारतीय नारी की भूमिका

डॉ. निर्भय कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग,
रामजस कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिन्दी भाषा और साहित्य के महत्त्वपूर्ण कवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी की महिमा का गान करते हुए कहा है कि – **'एक नहीं, दो-दो मात्राएँ नर से भारी नारी'** इस सृष्टि में नारी निश्चय ही श्रेष्ठतम है और रचनात्मक भी। वह सृजन का आधार है। उसकी प्रकृति कुम्हार की है। वह मानव से लेकर सृष्टि में स्थित अनेक वस्तुओं को कुम्हार की भाँति गढ़ती है। जिस प्रकार कुम्हार चाक पर चढ़े मिट्टी के बर्तन को सुंदर आकार देने के लिए कहीं से मिट्टी काटता-छाँटता है, तो कहीं मिट्टी भरता है। ठीक उसी प्रकार यह अपने ममत्व व रचनात्मक-कौशल से हमारे विकारों को काटती-छाँटती है और हमारे भीतर संस्कार व शक्ति भरकर हमें एक सुंदर आकार व रचनात्मक-क्षमता प्रदान करती है। नारी उत्थापन भी है और आरंभ भी। इसीलिए उसे आदिशक्ति स्वरूपा कहा गया है। वह शिव भी है और शक्ति भी। भारतीय संस्कृति सनातन काल से अर्धनारीश्वर की महिमा का गान करती आई है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नारी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

इतिहास साक्षी है कि भारतीय समाज ने कभी भी इस मातृशक्ति के महत्त्व का आकलन कम नहीं किया। और जब-जब भी ऐसा करने का प्रयत्न किया गया, तब-तब समाज में कुरीतियाँ और दुर्बलताएँ ही पनपीं और हमारा समाज पराभव की ओर गया। हमारे वेद और प्राचीन ग्रंथ नारी शक्ति के योगदान से सृजित हुए हैं। विश्ववरा, अपाला, लोमशा, लोपामुद्रा तथा घोषा जैसी विदुषियों ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना कर तथा मैत्रेयी, गार्गी, अदिती इत्यादि विदुषियों ने अपने ज्ञान व रचनात्मक-कौशल से तत्कालीन तत्वज्ञानी पुरुषों को अपना लोहा मानने पर विवश कर दिया। इतना ही नहीं, रणक्षेत्र में अपने अदम्य साहस, निर्णय-क्षमता और युद्ध-कौशल से विदेशी आक्रांताओं को नाको चने चबाने को विवश कर देने वाली झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पूर्वोत्तर भारत की रानी गाइदिन्ल्यू, रानी द्रौपदी, महारानी तपस्विनी, तुलसीपुर की रानी ईश्वर कुमारी, अनूपनगर की चौहान रानी, रामगढ़ की रानी अवंतिका बाई लोधी, सिकंदर बाग की वीरांगना ऊदा देवी, नाना साहब पेशवा की पुत्री मैना, झाँसी की महिला सेना की वीरांगना झलकारी देवी, लक्ष्मीबाई की सहेली मुंदर, दामोह की रानी हिंडोरिया, जालौन की रानी तेजबाई, कित्तूर की रानी चेन्नमा, सुचेता कृपलानी, सरोजिनी नायडू आदि को भला कैसे विस्मृत किया जा सकता है? मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान जैसी उत्कृष्ट साहित्य-रचनाकार क्या भारत के इतिहास से ओझल हो सकती हैं?

यही कारण है कि भारतीय समाज में नारी को आरंभ से ही सृजन, सम्मान, स्वाभिमान एवं शक्ति का प्रतीक माना गया है। नारी शास्त्र हो या शस्त्र, घर हो या रणक्षेत्र हर स्थान पर अपनी रचनात्मकता, शक्ति व कौशल से समाज में अपनी भूमिका निर्धारित करती आई है। नारी का कार्य-क्षेत्र न केवल घर, अपितु संपूर्ण

संसार रहा है। वह चाहे कृषि-कार्य हो, बागवानी का कार्य हो, पशुपालन का कार्य हो, प्रकृति-पर्यावरण संरक्षण का कार्य हो, व्यापार का कार्य हो, चिकित्सा कार्य हो, तकनीकी विकास का कार्य हो, अंतरिक्ष साधने का कार्य हो, ग्राम विकास का कार्य हो, राष्ट्रोत्थान का कार्य हो भारतीय नारी ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी गहरी छाप छोड़ी है। इतना ही नहीं, प्रकृति ने नारी को सृजन का जो वरदान दिया है, वह इस सृष्टि में किसी पुरुष को प्राप्त नहीं है। इन सबके बीच भारतीय नारी आरंभ से ही अपनी भूमिकाओं के प्रति सदैव सचेत रही है।

अनादि काल से ही नारी को विनम्रता, कोमलता, भावुकता, क्षमाशीलता, सहनशीलता की प्रतिमूर्ति माना जाता रहा है, किंतु आवश्यकता पड़ने पर यही नारी रणचंडी का रूप धारण करने में भी संकोच नहीं करती। क्योंकि उसे भान है कि यह कोमल भाव मात्र उसे समाज में सहानुभूति और सम्मान दिला सकते हैं, किंतु समाज में सबके सामानांतर खड़ा होने के लिए उसे स्वयं को एक सशक्त, समर्थ, स्वावलंबी और अटल स्तंभ बनना ही होगा। इतिहास साक्षी है कि भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में अनेक भारतीय नारियों ने न केवल बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, अपितु भारत में स्त्री-चेतना को प्रज्वलित कर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर अंग्रेजी हुकूमत से स्वाधीनता छीन ली।

ऐसे में प्रश्न है कि क्या विविधतामयी इस नारी प्रकृति के बिना ग्राम्य-जीवन के विकास, उसकी समृद्धि और राष्ट्र की उन्नति की कल्पना भला की जा सकती है? इसका सीधा उत्तर है - नहीं। भारतीय नारियाँ देश की संपूर्ण जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा हैं। इसलिए ग्राम विकास में नारियों की भागीदारी के बिना हम वास्तविक अर्थ में ग्राम्य-जीवन के विकास की कल्पना ही नहीं कर सकते। निश्चित रूप से भारत के किसी भी विकास कार्यक्रम में नारियों की भूमिका किसी अर्थ में पुरुषों से कम नहीं है। वह चाहे सामाजिक कार्य हो, राजनीति का क्षेत्र हो, कृषि-व्यवसाय का क्षेत्र भारत की ग्रामीण नारियों ने अपनी सक्रिय भूमिका व दायित्त्व का निर्वहन करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है। भारत में 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायतीराज व्यवस्था पूर्णरूपेण लागू होती है। इसमें नारियों को पचास प्रतिशत का आरक्षण प्राप्त हुआ है। इसका परिणाम यह है कि पंचायतीराज व्यवस्था एवं ग्राम विकास के कार्यों में ग्रामीण नारियों की सक्रिय सहभागिता में वृद्धि हुई है। नारियों के नेतृत्व एवं योगदान से कई ग्राम पंचायतों ने विकास के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित किए हैं जो कि अपने आप में एक उदहारण है।

इसलिए ग्राम विकास की योजनाओं में भारत की ग्रामीण नारियों की भूमिका की किसी प्रकार भी अनदेखी नहीं की जा सकती। महाकवि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में लिखा है कि -

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक!
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक!!

अर्थात् तुलसीदास जी राम के मुँह से एक राजा की प्रकृति का बखान करवाते हुए यह कहलवाते हैं कि मुखिया यानी राजा यानी पालक मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परंतु विवेकपूर्वक सभी अंगों का समुचित पालन-पोषण करता है। यदि यहाँ हम थोड़ा अर्थ परिवर्तित कर दें, तो पाएँगे कि नारी, विशेषकर ग्रामीण नारी इस मुख के समान ही है जो अपने परिवार में एक अकेली होती है, किंतु विवेकपूर्वक परिवार के सभी सदस्यों का समुचित पालन-पोषण करती है। विवेकपूर्वक घर तथा बाहर के प्रत्येक कार्यों में अपने लोगों का सहयोग करती है। अपने कर्त्तव्य व दायित्वों का निःस्वार्थ संपादन करती है। अर्थात् भारतीय ग्रामीण नारी अपने परिवार की वही मुखिया यानी राजा यानी पालक होती है। किंतु यह विडंबना ही है कि कभी-कभी हमारे ही समाज में नारी के इस समर्पण को कोई सम्मान नहीं दिया जाता और प्रत्येक कार्य का श्रेय पुरुष वर्ग को ही प्राप्त होता है। अतः ग्राम विकास की योजनाओं में नारी के इस समर्पण, योगदान व सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए निश्चय ही उसे विकास कार्यों का दायित्व देना होगा ताकि वह अपनी भूमिका का विस्तार कर ग्राम्य-जीवन के विकास एवं राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बन सके। इसके लिए निःसंदेह भारत की ग्रामीण नारियों को अधिक शिक्षित, सक्षम, समर्थ और सशक्त बनाने की आवश्यकता है। ताकि वह अपना सर्वोत्तम देने के लिए सदैव तत्पर रहे।

भारत की ग्रामीण नारी को सशक्त बनाने के निमित्त उनमें आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान के साथ-साथ समाज में उनका सम्मानजनक स्थान होना भी आवश्यक है। इन नारियों को जागरूक व साहसी बनाने के लिए उनकी साक्षरता एवं आर्थिक स्वावलंबन प्राथमिक आवश्यकता है। किंतु आज स्वाधीनता के 73 वर्षों के पश्चात् भी ये स्वावलंबन केवल महानगरों और 'कॉर्पोरेट घरानों' की नारियों तक ही सिमट कर रह गया है। ग्रामीण नारियों की स्थिति आज भी दयनीय है। वे शिक्षा व स्वावलंबन से कोसों दूर है। इसका कारण यह नहीं कि ग्रामीण नारियों में शिक्षा के

देश की उन्नति के लिए हमें भारत की महिलाओं को सशक्त बनाना होगा। एक बार जब महिला कदम उठा लेती है, तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ता है और राष्ट्र विकास की ओर बढ़ता है।' हमें इस सत्य को समझना होगा कि शरीर के आधे हिस्से के विकास को विकास नहीं कहा जा सकता जब तक कि संपूर्ण शारीरिक विकास न हो। भारत की ग्रामीण नारियाँ हमारा आधा हिस्सा हैं। हमारे गाँवों के विकास में उनकी भूमिका की अनदेखी करना विकास की गति को दिशाहीन व अपंग बनाना है।

प्रति ललक या स्वावलंबी बनने का भाव नहीं है, अपितु उनमें महानगरीय और 'कॉर्पोरेट घरानों' की नारियों से अधिक ललक, श्रम-क्षमता व सामर्थ्य है। किंतु भारतीय गाँवों के हर क्षेत्र में पिछड़े होने के कारण वे अपनी श्रम क्षमता और सामर्थ्य का उपयोग सार्थक दिशा में नहीं कर पातीं और न ही ग्राम्य-जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति में उनका समुचित योगदान जुड़ पाता है। अत: ग्राम विकास की नीतियों में ग्रामीण नारियों की शिक्षा व उनके स्वावलंबन पर गंभीरता से विचार किया जाना अत्यंत अनिवार्य है। क्योंकि शिक्षा व स्वावलंबन ग्रामीण नारियों में स्वाभिमान पैदा करेगा। स्वाभिमान से उनके भीतर चेतना पैदा होगी और चेतना से वे अपने सामर्थ्य का निर्माण कर पाएँगी। इसलिए ग्रामीण नारियों में साक्षरता, स्वावलंबन या आत्मनिर्भरता का भाव जगाना ग्राम विकास की नीतियों की सबसे पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

हमारे समाज की यह बड़ी विडंबना है कि भारतीय नारियों, विशेषकर ग्रामीण नारियों को जेंडर आधारित भेदभाव व पुरुष वर्चस्व का सामना करना पड़ता है। इसके कारण वे अपनी रचनात्मक-क्षमता व निर्णय-क्षमता को निखार पाने में असमर्थ हो जाती हैं। हम अपने वर्चस्व के मद में यह भूल जाते हैं कि उनकी शक्ति, सामर्थ्य व रचनात्मक-क्षमता के कारण ही भारतीय संस्कृति में उन्हें पूज्य स्थान दिया गया है। इसलिए ग्राम विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम हम इस जेंडर आधारित भेदभाव व वर्चस्व को जड़ से समाप्त करें और विकास कार्यों में ग्रामीण नारियों की भूमिका को पहचान कर उन्हें अपना सहयोगी बनाएँ। स्वामी विवेकानंद ने भी भारतीय नारी के सामर्थ्य को महत्त्व देते हुए यह कहा था कि 'महिलाओं की स्थिति में सुधार के बिना विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि पंछी के लिए एक पंख के साथ उड़ना कठिन है। देश की उन्नति के लिए हमें भारत की महिलाओं को सशक्त बनाना होगा। एक बार जब महिला कदम उठा लेती है, तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ता है और राष्ट्र विकास की ओर बढ़ता है।' हमें इस सत्य को समझना होगा कि शरीर के आधे हिस्से के विकास को विकास नहीं कहा जा सकता जब तक कि संपूर्ण शारीरिक विकास न हो। भारत की ग्रामीण नारियाँ हमारा आधा हिस्सा हैं। हमारे गाँवों के विकास में उनकी भूमिका की अनदेखी करना विकास की गति को दिशाहीन व अपंग बनाना है।

आज भारत सरकार द्वारा ग्राम विकास की नीतियों में जेंडर समानता को प्राथमिकता देने के कारण पूरे ग्रामीण भारत में केवल नारी सशक्तीकरण को ही बढ़ावा नहीं मिला है, अपितु ग्राम्य जीवन की उन्नति में भी अप्रत्याशित सफलता मिली है। अब भी यह आवश्यक है कि ग्रामीण नारियाँ शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक रूप से सशक्त बनें। एक उत्कृष्ट शिक्षा का परिवेश घर पर ही पैदा हो सकता है, यदि उस घर की नारियाँ शिक्षित हों। क्योंकि यदि ग्राम-समाज की नारियाँ शिक्षित होंगी, तो वह अपने बच्चों व आने वाली पीढ़ी को भी बुनियादी स्तर पर शिक्षित कर पाएँगी और ग्राम विकास में इसके उत्कृष्ट परिणाम सामने आएँगे। अंग्रेजी में कहा भी जाता है कि 'The child learns his best lesson under the kisses of his mother and cares of his father.' अतः ग्राम विकास की योजनाओं में ग्रामीण नारियों की शिक्षक रूपी इस भूमिका को बढ़ावा देना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त परिवार व ग्राम-समाज के उत्थान के लिए एक स्वस्थ परिवार की भी आवश्यकता है। ग्रामीण परिवार की नारियों के स्वास्थ्य को लेकर ग्राम्य-जीवन में अत्यंत उदासीनता देखने को मिलती है। मनगढ़ंत देशी उपचारों के कारण उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और बाद में वह परिवार शहरों में उसके उपचार के लिए भटकता रहता है। इतना ही नहीं, इस कारण वह ग्रामीण परिवार आर्थिक रूप से विपन्न हो जाता है। यह ग्राम्य-जीवन के विकास में बड़ी बाधा है। एक स्वस्थ नारी ही एक स्वस्थ परिवार, एक स्वस्थ समाज और एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकती है। अत: ग्राम विकास की योजनाओं में ग्रामीण नारियों के स्वास्थ्य को लेकर विशेष चिंता होनी चाहिए। ग्रामीण नारियों से जुड़े ये पहल राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं। ग्रामीण नारी सशक्तीकरण के स्वप्न को सच करने के लिए बेटियों के महत्त्व और उनकी स्वास्थ्य-शिक्षा को प्रचारित-प्रसारित करने की आवश्यकता है। इस

भारत गाँवों का देश है। गाँव केवल भूगोल का शब्द नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक इकाई है। भारतीय संस्कृति में सहजीवन और सहअस्तित्व का व्यावहारिक रूप गाँवों में ही जीवंत रहा है। जो प्राचीन ग्राम्य-जीवन एवं उसके विकास के स्वर्णयुग को दर्शाता है। अतः यह सहजीवन और सहअस्तित्व आधुनिक ग्राम्य-जीवन और उसके विकास का आधार तभी बन सकता है जब हम ग्राम विकास की संकल्पनाओं में भारतीय नारी, विशेषकर ग्रामीण नारी की भूमिका की पहचान करें। उसे स्वीकार करें।

प्रकार राष्ट्र को पूरी तरह से विकसित बनाने तथा राष्ट्रोत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक अचूक शस्त्र के रूप में है ग्रामीण नारी सशक्तीकरण।

भारत की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार पंचायतीराज व्यवस्था रही है। सभ्य समाज की स्थापना के पश्चात् से ही मनुष्य ने जब समूहों में रहना सीखा, तब से पंचायती राज व्यवस्था के आदर्श एवं मूल सिद्धांत उसकी चेतना में विकसित होते आए हैं। इस व्यवस्था को विभिन्न कालों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता रहा है। कभी उन्हें गणराज्य कहा गया, तो कभी नगर शासन व्यवस्था और कभी किसी अन्य नाम से उनकी पहचान हुई। किंतु उन सभी व्यवस्थाओं में एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर रहने, मिलजुल कर कार्य करने और अपनी तात्कालिक समस्याओं को अपने आप सुलझाने की प्रवृत्ति निरंतर विकसित होती रही। सहकारिता और स्वावलंबन या आत्मनिर्भरता इन व्यवस्थाओं का मूल मंत्र रहा है। यही कारण है कि महात्मा गाँधी ने स्वतंत्र भारत में एक सशक्त पंचायतीराज शासन पद्धति का स्वप्न संजोया था। उनका मानना था कि इसमें शासन कार्य की सबसे प्राथमिक इकाई भारत की ग्रामीण पंचायतें होंगी। उनकी कल्पना पंचायतों की शासन व्यवस्था की धुरी होने के साथ ही गाँवों व गाँववासियों के आत्मनिर्भर, पूर्णतया स्वायत्त और स्वावलंबी होने की थी। स्वतंत्रता के पश्चात् महात्मा गाँधी की इस परिकल्पना को साकार करने हेतु समय-समय पर प्रयास किए गए। कभी ग्रामीण विकास के नाम पर और कभी सामुदायिक विकास की योजनाओं के माध्यम से पंचायतों को सशक्त एवं लोकतंत्र का मूल आधार बनाने के लिए उनका उपयोग किया जाता रहा।

इस प्रकार संपूर्ण देश में शासन-प्रशासन का विकेंद्रीकरण करके बुनियादी स्तर पर पंचायतीराज की स्थापना कर जनता के हाथ में सीधे अधिकार देने का शुभारंभ 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से किया गया। पंचायतीराज को संवैधानिक मान्यता मिलते ही भारतीय ग्रामीण पंचायतों में अन्य वर्गों के साथ ग्रामीण महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। आज यह प्रतिनिधित्व कितना प्रभावी है? इसकी सख्त निगरानी व समीक्षा होनी चाहिए। क्योंकि कहने को तो उन्हें प्रतिनिधित्व मिल गया है, किंतु आज भी पंचायतों में शासन की कमान पुरुष वर्ग के वर्चस्व के अधीन ही है। सभी निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं और नारियाँ केवल हस्ताक्षर करने वाला पुतला बनकर रह गयी हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि पंचायतीराज व्यवस्था लागू होने से ग्रामीण नारियों को संवैधानिक अधिकार तो प्राप्त हो गए, किंतु उनको लेकर समाज की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आ सका। यह गंभीर चिंता का विषय है। ग्राम विकास की नीतियों का निर्माण करते समय इस पर ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि नारी सच्चे अर्थों में अपनी भूमिका का निर्वहन कर पाए।

यह प्रमाणित सत्य है कि राष्ट्र की उन्नति या उत्थान का आधार भारत के गाँव ही हैं। आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा गाँवों के विकास में ही निहित है। गाँवों के विकास की संकल्पना पंचायतों के विकास से ही साकार हो सकती है। पंचायतों का विकास उसके प्रतिनिधियों व स्थानीय स्वशासन को सशक्त करने से ही संभव हो सकता है। किंतु आज भी यह बड़ी विडंबना है कि घर के प्रबंधन से लेकर गाँव के सुख-दुःख में सम्मिलित होने वाली ग्रामीण नारी व्यावहारिक धरातल पर ग्राम विकास की नीतियों से अलग रखी जाती है और पंचायतों में उसके द्वारा लिए जाने वाले सभी निर्णय उसके पिता, पुत्र, भाई या पति द्वारा लिए गए होते हैं। इतना ही नहीं, स्वयं उसके परिवार या ग्राम-समाज के पुरुष सदस्यों द्वारा गाँव को सजाने-सँवारने तथा स्थानीय संसाधनों को अपनत्व भाव से संरक्षण प्रदान करने का उत्तरदायित्व अकेले ही अपने ऊपर लेने वाली इस कर्मठ नारी को संसाधनों के उपयोग तथा गाँव के विकास पर लिए जा रहे निर्णयों से दूर रहने को विवश किया जाता है। अतः इस बात को बारंबार दुहराना होगा कि नारियाँ समाज का आधा हिस्सा हैं। गाँव के विकास तथा स्थानीय प्रबंधन में इन्होंने कई पंचायतों में अग्रणी भूमिका निभाई है। ऐसे में स्थानीय स्वशासन में उनको वास्तविक भागीदार बनाना ग्राम विकास तथा राष्ट्रोत्थान के लिए एक आदर्श पहल होगी। भारत गाँवों का देश है। गाँव केवल भूगोल का शब्द नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक इकाई है। भारतीय संस्कृति में सहजीवन और सहअस्तित्व का व्यावहारिक रूप गाँवों में ही जीवंत रहा है। जो प्राचीन ग्राम्य-जीवन एवं उसके विकास के स्वर्णयुग को दर्शाता है। अतः यह सहजीवन और सहअस्तित्व आधुनिक ग्राम्य-जीवन और उसके विकास का आधार तभी बन सकता है जब हम ग्राम विकास की संकल्पनाओं में भारतीय नारी, विशेषकर ग्रामीण नारी की भूमिका की पहचान करें। उसे स्वीकार करें। ❑

जिस तरह भूमि सुधार के द्वारा जागीरदार एवं जमींदार जैसे मध्यस्थों को भू-स्वामित्व में समाप्त किया गया। कृषि विपणन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा किए गए प्रावधानों के द्वारा कृषि विपणन में प्रतियोगिता तथा व्यापक बाजार पहुँच के उपायों के माध्यम से मध्यस्थों को समाप्त कर कृषि विपणन द्वारा किसानों को उनकी उपज का वास्तविक वह सही मूल्य प्राप्त किया जाना सुनिश्चित हो सकेगा।

कृषि विपणन में सुधार एवं कृषि विकास

राजेश जांगीड़

सह आचार्य, अर्थशास्त्र,
राज. महाविद्यालय, रेलमगरा,
राजसमंद (राज.)

भारत जैसे विकासशील देशों में आर्थिक वृद्धि मुख्यत: कृषि व सहायक क्षेत्रों के निष्पादन पर निर्भर करती है। यह क्षेत्र ग्रामीण आजीविका, रोजगार, निर्यात, खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। देश की 60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है तथा यह क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद का केवल 16.5 प्रतिशत योगदान कर रहा है। यह क्षेत्र देश में गरीबी तथा अल्प रोजगार का सबसे बड़ा क्षेत्र है। हरित क्रांति अब थक चुकी है तथा इसने देश में अंतर क्षेत्रीय, अंतर किसान तथा अंतर फसली असमानता उत्पन्न की है साथ ही गंभीर पर्यावरण संकट के साथ कृषि की वृद्धि दर को बनाए रखने में भी असफल है। फसल प्रारूप को परंपरागत अनाज फसलों की तुलना में उच्च मूल्य कृषि उत्पादों (फल, सब्जी, फूल, पशु उत्पाद तथा उर्जा उत्पाद) की तरफ ले जाने की आवश्यकता है। यह क्षेत्र केवल घरेलू अर्थव्यवस्था में नहीं अपितु विश्व अर्थव्यवस्था में सबसे तेजी से बढ़ रहा है।

कृषि विपणन में समस्या

कृषि विपणन की भूमिका उत्पादक से उपभोक्ता तक कृषि उत्पाद को पहुँचाना है। लेकिन विस्तृत अर्थ में इसकी भूमिका उत्पादक फर्म को आर्थिक संकेत देना, कृषि वस्तुओं के उत्पादन में वांछित वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देना, उत्पादक तथा उपभोक्ता के कल्याण में सुधार करना, माँग तथा पूर्ति को संतुलित करना तथा उत्पादन और वितरण प्रणाली में संसाधनों के कुशल उपयोग को बढ़ावा देने वाली व्यवस्था तक है। इन भूमिकाओं के लिए एक प्रतियोगी वातावरण, मजबूत सांस्थानिक व भौतिक अवसंरचना तथा एक अनुकूलतम नियामक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। यह विकासशील देशों में अपने आप नहीं आती इसलिए कृषि विपणन नीतियाँ विकास नीति का अभिन्न हिस्सा होती हैं तथा उसका कार्यक्रम लोकनीति का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

1960 के दशक तक भारत में मुख्यत: बाजार की कार्यप्रणाली ठीक से चली तथा उत्पादक व उपभोक्ता पर हानिकारक प्रभाव डालने वाली गतिविधियों को रोकने तक कृषि बाजार में हस्तक्षेप थे। उसके पश्चात सरकार ने कृषि बाजार व कीमत पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने वाले पैकेज को अपनाया जो प्रारंभ में चावल और गेहूँ की खरीद तथा वितरण को लेकर लक्षित था। धीरे-धीरे इसका विस्तार अन्य फसलों तथा कृषि में घरेलू बाजार के अन्य पहलुओं तक लाया गया। 1991 के बाद कृषि में संस्थागत साख कमजोर होने तथा कृषि उत्पादन की तुलना में मंडी विकास की धीमी वृद्धि (1991 से 2008 के मध्य कृषि उपज की मात्रा में 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि उपज मंडी की वृद्धि दर मात्र 22 प्रतिशत) रहने के कारण किसानों की मध्यस्थों पर वापस निर्भरता बढ़ने लगी। इस प्रकार मंडी व्यवस्था में मध्यस्थों की भूमिका बढ़ने लगी क्योंकि वह किसान को ऋण देकर उपज खरीदने का करार करने लगे। इससे किसानों की बेचने के स्थान विक्रेता की स्वतंत्रता बाधित होने लगी। कृषि विपणन के प्रति राज्य सरकारों की उपेक्षा के चलते मंडियों में मध्यस्थों की ताकत बढ़ने लगी।

योजना आयोग (2011) की कृषि

विपणन पर कार्यकारी समूह ने कृषि विपणन में निम्न समस्याएँ बताई। एक, बड़ी संख्या में मध्यस्थों की उपस्थिति। दो, अपर्याप्त भंडारण छटनी तथा ग्रेडिंग की सुविधा। तीन, अप्रशिक्षित मंडी कार्मिक। चार, मंडी में कीमत निर्धारण प्रक्रिया का पारदर्शी नहीं होना। पाँच, बाजार सूचना की आसान प्राप्ति का अभाव। छह, आवश्यक वस्तु अधिनियम अनावश्यक रूप से उपस्थित के परिवहन भंडारण तथा लाने ले जाने पर बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार कृषि उपज बाजार समिति अधिनियम जो किसानों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया था तथा कृषि उपज के बाजार में दक्षता व पारदर्शिता के लिए बनाया गया था अब किसानों के बेहतर कीमत मिलने के अवसर को बाधित कर रहा है, प्रतियोगिता को कम कर रहा है तथा मध्यस्थों के हितों की रक्षा कर रहा है।

रमेश चंद्र (2012) का अध्ययन दर्शाता है कि देश में कृषि बाजार में छोटे व्यापारियों की भरमार है जो सीमित बाजार क्षेत्र में छोटे स्तर पर काम करते हैं। कृषि की दृष्टि से विकसित पंजाब में 22000 कमीशन एजेंट थे। प्रत्येक 50 किसानों पर एक कमीशन एजेंट था। इनके अलावा मध्यस्थों, यथा- थोक व्यापारी, श्रमिक ठेकेदार, परिवहन कर्मी तथा दलाल प्रत्येक बाजार में पाए गए। क्योंकि इनके बाजार का आकार छोटा होता है इसलिए छोटी मात्रा के व्यवसाय पर ज्यादा कमीशन लेते हैं। इस प्रकार कृषि उपज का बाजार लंबा, विभाजित तथा बड़े आकार की मितव्ययता के अभाव की स्थिति में है। किसान से उपभोक्ताओं के मध्य औसत रूप से 4 से 6 मध्यस्थ थे। लेनदेन की प्रत्येक अवस्था में मध्यस्थ का मार्जिन शामिल होता है इसलिए जो किसान को मिलता है तथा जो उपभोक्ता वहन करता है उसमें काफी कीमत अंतराल हो जाता है। रमेश चंद (2012) का अध्ययन दर्शाता है कि महाराष्ट्र में अरहर की बढ़ी हुई कीमत का लाभ मध्यस्थों ने ले लिया तथा किसानों को नहीं मिला। 2000 से 2009 के मध्य अरहर की खेती कीमत की तुलना में थोक व्यापार कीमत 70 प्रतिशत अधिक पाई गई इसका मुख्य कारण यह था कि अरहर उपज की खरीद व बिक्री केवल इन कृषि उपज विपणन समिति में ही की जाने की व्यवस्था थी जबकि यह किसान के राज्य के बाहर अपनी फसल को बेचकर बेहतर कीमत प्राप्त करने से रोकता है।

1955 का आवश्यक वस्तु अधिनियम, सभी कृषि वस्तुएँ यथा अनाज, दाल, खाद्य तेल, तिलहन, खाद्य, खल, कपास, चीनी, गुड़ तथा जूट पर लाइसेंस, परमिट, कीमत नियंत्रण, भंडारण, भंडार सीमा, परिवहन, वितरण तथा विक्रय संबंधी प्रतिबंध लगाता है। इस अधिनियम के अंतर्गत केंद्र व राज्य सरकारों ने बड़ी संख्या में नियंत्रण आदेश जारी कर रखे हैं। इसके अलावा कृषि उपज श्रेणीकरण तथा विपणन अधिनियम 1937 के अनुसार अनेक वस्तुओं के गुणवत्ता मानक तथा श्रेणी विशिष्टीकरण परिभाषित की गई है इसके तहत किसी व्यक्ति या सहकारिता को कृषि वस्तु श्रेणीकरण के लिए अनुमति लेनी होती है। देवराय, कौशिक एवं झा (2010) का अध्ययन दर्शाता है कि कृषि विपणन के क्षेत्र में सरकार द्वारा अत्यधिक नियंत्रण व हस्तक्षेप ने कृषि विपणन के क्षेत्र में निजी व्यापार को तथा निवेश को बाधित किया है और यह अनुत्पादक है।

समावेशी कृषि : बेहतर विपणन व्यवस्था

कुल कृषि उत्पादन मूल्य में उच्च मूल्य कृषि उत्पाद (फल, फूल, सब्जी, दूध तथा अन्य पशु उत्पादों) का बढ़ता हिस्सा कृषि विपणन रणनीति में महत्त्वपूर्ण सुधार की आवश्यकता प्रतिपादित करता है। उच्च मूल्य कृषि उत्पाद का बाजार कृषि पदार्थों में सबसे तेज गति से बढ़ने वाला बाजार है। बढ़ती आय, बढ़ता शहरीकरण, बदलती उपभोग वस्तुओं की संरचना, शहरों में बढ़ता संगठित फुटकर व्यापार तथा वैश्वीकरण उच्च मूल्य कृषि उत्पादों के बाजार को तेजी से विस्तारित कर रहा है। कृषि उत्पाद करने वाला किसान तथा उनको क्रय करने वाले उपभोक्ता के मध्य कम से कम मध्यस्थों की उपस्थिति होनी चाहिए। यह कृषक के हित में भी है तथा उपभोक्ता के हित में भी है। उच्च मूल्य कृषि उत्पाद में शीघ्रनाशी वस्तुएँ शामिल होती हैं। इन वस्तुओं के संगठित व्यापार को विकसित होने के लिए जटिल तथा व्यवस्थित आपूर्ति व्यवस्था की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह अवसंरचना अपर्याप्त है। इस संरचना के लिए निजी निवेश की बड़ी आवश्यकता है। यह निजी निवेश संविदा खेती के प्रावधानों के द्वारा व्यवस्थित किया जा सकता है। भारत में अधिकांश कृषक छोटे तथा सीमांत कृषक हैं। उच्च मूल्य कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण में व्यापक गैर फार्म रोजगार की संभावनाएँ निहित है क्योंकि यह श्रम का गहन उपयोग करने वाला क्षेत्र है। संविदा कृषि भारत के कई राज्यों में प्रचलित है लेकिन संविदा कृषि पर कानून बनाना इसलिए आवश्यक है ताकि किसी तरह के विवादों के निपटान के लिए व्यवस्थित संरचना का निर्माण किया जा सके (आचार्य, 2004)। फर्म तथा फार्म के मध्य सीधे लेनदेन से कृषक को सुनिश्चित कीमत प्राप्त होगी, तकनीकी मदद मिलेगी, कृषि में निवेश बढ़ेगा, कृषि क्षेत्र में आय तथा रोजगार में वृद्धि होगी तथा कृषि क्षेत्र की जोखिम कम होगी।

किसान की आय तथा रोजगार को बढ़ाने के लिए इन मध्यस्थों के उन्मूलन की आवश्यकता है। जिस तरह भूमि सुधार के द्वारा जागीरदार एवं जमींदार जैसे मध्यस्थों को भू-स्वामित्व में समाप्त किया गया। कृषि विपणन में नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा किए गए प्रावधानों के द्वारा कृषि विपणन में प्रतियोगिता तथा व्यापक बाजार पहुँच के उपायों के माध्यम से मध्यस्थों को समाप्त कर कृषि विपणन द्वारा किसानों को उनकी उपज का वास्तविक व सही मूल्य प्राप्त किया जाना सुनिश्चित हो सकेगा। कृषि विपणन के इन उपायों के माध्यम से कृषि क्षेत्र पर श्रम बल की निर्भरता तथा कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान के मध्य असन्तुलन को पूरा कर सकने में मदद मिलेगी। ❑

ग्रामीण विकास की नींव – पंचायती राज

डॉ. अनीता मोदी
सह आचार्य,
अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय (पी.जी.) कॉलेज,
खेतडी (राजस्थान)

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज को एक ही सिक्के के दो पहलू कहना अतिशयोक्ति नहीं है। गाँधी जी ने पंचायतों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उचित ही कहा था, 'सच्चा लोकतन्त्र वही है जो निचले स्तर पर लोगों की भागीदारी पर आधारित हो। यह तभी संभव है जब गाँव में रहने वाले आम आदमी को भी शासन के बारे में फैसला करने का अधिकार मिले।'

भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामीण है क्योंकि देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। अतः गाँवों का विकास किये बिना देश का विकास संभव नहीं हैं, विकास की कल्पना अधूरी है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करके ग्रामीण विकास के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है।

पंचायती व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य यही है कि गाँवों से पुरानी व्यवस्था को परिवर्तित करके एक ऐसे समतामूलक समाज की रचना की जाए जिसमें असमानता, अन्याय व शोषण की लकीरें विद्यमान नहीं हो, समाज के सभी जाति, वर्ग महिला व पुरुष व बालकों के अधिकारों को संरक्षित व सुरक्षित करना संभव हो सके। बेरोजगारी गरीबी व भुखमरी जैसे दानवों से मुक्त गाँव स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के प्रतिबिम्ब हों। इस प्रकार से सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर प्रशस्त गाँव ही देश के विकास की वास्तविक तस्वीर के प्रत्यक्ष साक्षी होंगे तथा इस दुष्कर व जटिल कार्य के सम्पादन में पंचायतों की भूमिका सर्वोपरि एवं महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

देश में संविधान के 73 वें संशोधन के माध्यम से मृतप्राय पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया तथा संवैधानिक दर्जा देकर इनका अस्तित्व भी सुरक्षित किया गया है। 73 वें तथा 74 वें संशोधनों के कारण इन पंचायतों को प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होने के साथ ही वित्तीय संसाधनों की गारंटी प्राप्त हो गई। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

पंचायतें ग्यारहवीं सूची में सूचीबद्ध आर्थिक-सामाजिक विकास से संबंधित विभिन्न विषयों पर योजनाएँ बनाकर व उनके सफल क्रियान्वयन को सुनिश्चित करते हुए गाँवों में विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही है। गाँवों में कृषि विकास व विस्तार, पशुपालन, मत्स्यपालन, वन विकास, लघु व कुटीर उद्योगों के विकास का भार पंचायतों के कंधों पर ही है। गाँवों में सफाई, स्वच्छता, चिकित्सा, शिक्षण व्यवस्था, बिजली, पानी व सिंचाई जैसी आधारभूत सुविधाओं का प्रावधान पंचायती संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। इसके साथ ही महिला वर्ग, गरीब वर्ग व पिछड़े वर्ग के कल्याण हेतु विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण, रख-रखाव व देखभाल की जिम्मेदारी पंचायतों पर है। इस प्रकार से, पंचायतीराज संस्थाएँ गाँवों को सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से सशक्त बनाकर उनके सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए कटिबद्ध हैं। इसी दिशा में, सरकार ने 27 मई, 2004 को पंचायती राज मन्त्रालय की स्थापना करके पंचायती राज व्यवस्था से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समस्याओं के शीघ्र समाधान हेतु एक साहसिक कदम बढ़ाया है।

गाँवों में विद्यमान बेरोजगारी, गरीबी व निरक्षरता जैसी भयावह समस्याओं के समाधान में पंचायतें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। देश में गरीबी उन्मूलन व रोजगार सृजन हेतु संचालित विभिन्न योजनाओं के सफल क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व पंचायतों को सौंपा गया है। पंचायतें जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना,

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के प्रभावी कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। पंचायतें 'महिला स्वयं सिद्धा योजना' को महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से संचालित करती हुई महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास कर रही है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के 'सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान' के जरिए पंचायत संस्थाएँ ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार लाने के लिए कटिबद्ध है। इस अभियान के अन्तर्गत सफाई, गृह स्वच्छता, शुद्ध जल, मल मूत्र के निस्तारण की प्रभावी व्यवस्था पर जोर दिया गया है। इसके साथ ही सुलभ शौचालयों का निर्माण भी प्राथमिकता के तौर पर किया गया है। गाँवों में पेयजल की समस्या का समाधान करने हेतु केन्द्र सरकार ने स्वजल धारा कार्यक्रम के क्रियान्वयन का दायित्व पंचायतों को सौंपा है। ग्राम पंचायतों के माध्यम से लागू किए गए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गाँवों में कुएँ, बावड़ी बनाने व हैण्ड पम्प लगाने का है। अनुसूचित जाति/जनजाति, कमजोर वर्गों के लोगों को तथा मुक्त बन्धुआ श्रमिकों को आवास उपलब्ध कराने के लिए पंचायतें प्रयासरत हैं। इसी भाँति राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित तीन योजनाओं- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना एवं राष्ट्रीय प्रसव लाभ योजनाओं का कार्यान्वयन पंचायतों द्वारा ही किया जाता है। ग्रामीण-शहरी अन्तराल को पाटते हुए सन्तुलित सामाजिक-आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं के प्रावधान सम्बन्धी योजना (पुरा)का संचालन पंचायती संस्थाएँ प्रभावपूर्ण ढँग से कर रही हैं। इसी भाँति इण्डिया व भारत के बीच के अन्तर को पाटने के लिए गाँवों में आधारभूत सुविधाओं के विकास को निश्चित करने के लिए केन्द्र सरकार ने भारत निर्माण योजना के तहत गाँवों में छः प्रमुख क्षेत्रों यथा- सिंचाई, जलापूर्ति, आवास, सड़क, टेलीफोन एवं विद्युतीकरण के विकास का लक्ष्य रखा गया। इस योजना के प्रभावी कार्यान्वयन में पंचायतों की भूमिका पर बल दिया गया।

पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण व्यवस्था का प्रावधान होने से महिला सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस आरक्षण व्यवस्था के कारण ही महिलाएँ अपने घर की देहरी से बाहर कदम रखकर राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते हुए अपनी क्षमता व कौशल का परिचय दे रही हैं।

पंचायत संस्थाएँ ग्राम विकास, समृद्धि एवं समुन्नति का आधार साबित हो रही हैं। इसी वजह से देश विकास के नए स्तरों को छू रहा है। पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर गाँवों में ही किया जा रहा है। जिससे समय, श्रम, धन व उर्जा की बचत होती है। पंचायती राज व्यवस्था के प्रभावी होने की वजह से गाँवों में राजनैतिक चेतना, राजनैतिक जागृति एवं राजनैतिक सहभागिता का सूत्रपात हुआ है। सत्ता में सदियों से शोषित दलित वर्ग, अनुसूचित जाति व जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लोगों की भागीदारी व नेतृत्त्व बढ़ने से उनमें नवीन शक्ति, सामर्थ्य व चेतना का संचार हुआ है।

पंचायतीराज व्यवस्था ग्राम विकास के लिए आशा की किरण है। यह व्यवस्था वास्तविक अर्थों में तभी सफल व प्रभावी होगी जब गाँवों में शिक्षा व साक्षरता की रोशनी फैलेगी, ग्रामीणजन संकीर्ण भावनाओं, तुच्छ स्वार्थों व दलगत राजनीति से उपर उठकर व्यापक सोच व चिन्तन को अपनाने हेतु ग्रामों के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करेंगे।

इन सब उपलब्धियों के बावजूद भी पंचायती राज व्यवस्था के क्रियान्वयन में अनेक खामियाँ हमारे समक्ष आई हैं, जिनको दूर करके इस व्यवस्था को और अधिक सशक्त, प्रभावी एवं सफल बनाया जा सकता है। पंचायती चुनावों के दौरान हिंसात्मक घटनाओं, मतपेटियाँ छीनने, जोर-जबर्दस्ती व गुण्डागर्दी का बोलबाला रहता है, जिससे इन चुनावों की निष्पक्षता पर सवालिया निशान लग जाता है। इसी तरह, पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की आरक्षण व्यवस्था लागू करने के बावजूद भी वास्तविक सत्ता पुरुष वर्ग के हाथों में ही संकेन्द्रित रहती हैं। महिलाएँ निरक्षरता, जागरूकता की कमी एवं सामाजिक बन्धनों के कारण नाममात्र की अध्यक्ष, सरपंच या निर्वाचित प्रतिनिधि बन कर रह जाती हैं। गाँवों में विभिन्न वर्गों व जातियों के मध्य तनाव व वैमनस्य की दीवारें विद्यमान होने के कारण पंचायतें अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर पाती हैं।

वस्तुत: पंचायतीराज व्यवस्था ग्राम विकास के लिए आशा की किरण है। यह व्यवस्था वास्तविक अर्थों में तभी सफल व प्रभावी होगी जब गाँवों में शिक्षा व साक्षरता की रोशनी फैलेगी, ग्रामीणजन संकीर्ण भावनाओं, तुच्छ स्वार्थों व दलगत राजनीति से उपर उठकर व्यापक सोच व चिन्तन को अपनाने हेतु ग्रामों के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करेंगे। पंचायती राज संस्थाएँ ईमानदारी व पारदर्शी ढँग से सम्पूर्ण ग्रामीण कार्यक्रमों के संचालन हेतु कटिबद्ध होने पर ही गाँवों की धुंधली तस्वीर को चमका कर वास्तविक मायनों में सबका साथ सबका विकास की धारणा को मूर्त रूप प्रदान कर सकती है और तभी समावेशी विकास संभव हो पायेगा। ❑

भारतीय ग्राम : विकास एवं संस्कृति संरक्षण

डॉ. ओमप्रकाश पारीक

सह-आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, आहोर (जालोर)

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है-

सद्भावे साधुभावे
च सदित्येतप्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा
सच्छब्द: पार्थ युज्यते।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 17/26)

सत्य के अर्थ में, अच्छाई के अर्थ में सद् का प्रयोग होता है तथा ऐसा कार्य जिसकी सभी ओर प्रशंसा हो ऐसे अर्थ में 'सद्' शब्द का प्रयोग होता है। वास्तव में गीता हमारे भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक सभी पक्षों में उत्तमता और कुशलता का सञ्चार करती है। उपर्युक्त गीता श्लोक हमारे द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य के साथ संगत होता है। उसी अर्थ में हम ग्राम विकास को लेते हैं। पहले हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि वहाँ का सत्य क्या है और उस सत्य के अनुसार कौनसी हमारी योजनाएँ हों जो अच्छाई लिए हुए हों तथा जिनकी क्रियान्विति के पश्चात् उसकी सर्वत्र प्रशंसा हो। इसमें ग्राम विकास के प्रति हमारी निष्ठा, रुचि और प्रतिबद्धता भी झलकती है। क्योंकि सर्वत्र प्रशंसित होने वाला कार्य इनका ही परिणाम होता है। जहाँ तक हम खुशहाली को देखते हैं वह किसी एक पक्ष का परिणाम नहीं हो सकती वह संतुलन का परिणाम होती है। आज जो दशा हम महानगरों की देख रहे हैं वह असंतुलित विकास का दुष्प्रभाव है। वास्तव में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पञ्चमहाभूत महानगरों में अत्यधिक-विकृत होते जा रहे हैं। ये तत्त्व मानव के लिए तभी शिव हो सकते हैं जब इनकी आराधना हो अन्यथा ये रौद्र होते जाते हैं। ये ईश्वर के प्रत्यक्षरूप हैं इनकी अवहेलना कर विकास करना आपत्तियों को बुलावा देना है। वास्तव में मानव की अन्त:प्रकृति एवं बाह्य दृश्यमान प्रकृति एक जैसी ही है। अत: कहते हैं 'यत पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' जो इस शरीर के अन्दर है वही संपूर्ण ब्रह्माण्ड में है। भारतीय ग्रामों की बाह्य प्रकृति शुद्ध है इसलिए वहाँ का आहार-विहार भी शुद्ध है फलत: वहाँ का जनजीवन और संस्कृति अपनेपन, सादगीपूर्ण और सरल है जिससे अभाव में भी प्रसन्नता ग्रामीणों का साथ नहीं छोड़ती। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें अभाव में रहना चाहिए वहाँ भी सुख-सुविधाएँ, स्वच्छता और स्वास्थ्य शिक्षा आवश्यक हैं पर वहाँ की सहज सरल अन्त:प्रकृति एवं शुद्ध बाह्य प्रकृति पर प्रहार करके उचित नहीं है।

हमारा उपनिषद् का वाक्य है 'न हि वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:' धन के द्वारा व्यक्ति कभी संतुष्ट एवं प्रसन्न नहीं हो सकता। यह हमारा संस्कृति का शाश्वत मूल्य है कि हमें धन कैसे कमाना चाहिए, कितना कमाना चाहिए और उसका उपयोग क्या हो, इसलिए कहा है -

साईं इतना दीजिये जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

इसलिए दान, भोग और नाश धन की तीन गतियाँ बताई गई हैं इसमें यह तथ्य निहित है कि हम त्याग कर भोग करें। विकास का जो स्वरूप हमने निश्चित किया है उसकी समीक्षा की आवश्यकता है। आज तन्त्र द्वारा 'वोकल फोर लोकल' का महावाक्य दिया जा रहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। वास्तव में ग्रामीण संस्कृति वहाँ का रहन-सहन एवं जन-जीवन एक दूसरे की सहायता सहयोग और आत्मीयता पर आधारित है। वहाँ के पारम्परिक व्यवसायों से उत्पन्न वस्तुएँ

और सेवाएँ परस्पर संतुष्टि और खुशी प्रदान करने वाली है। अत: कुम्हार, लोहार, दर्जी, बढ़ई, बुनकर, सुनार एवं अन्य पारम्परिक पारिवारिक हुनर पर आधारित व्यवसायों को समृद्ध करने हेतु आधुनिक सहायता दी जानी चाहिए जिससे न केवल गाँव के परिवारों को कार्य मिलेगा अपितु वहाँ के बेरोजगारों का नगर और महानगरों की ओर पलायन भी रुकेगा। साथ ही वहाँ की बाह्य प्रकृति प्रदूषित न होने से उनका स्वास्थ्य अच्छा होगा। इसी प्रकार गाँवों में कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए। ये ऐसे उद्योग हैं जो कि गाँवों के कृषि कार्य से अतिरिक्त श्रम को स्थानीय स्तर पर ही कुशलता के साथ नियोजित कर सकते हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में छिपी बेरोजगारी के निराकरण में सक्षम हैं जैसे फल एवं सब्जी, डेयरी, कृषि, कृषि औजार, बीज उत्पादन, सिंचाई उपकरण, खाद तैयार करना, कपास पर आधारित कपड़ा बुनाई उद्योग, जूट की वस्तुओं पर आधारित, खादी और ग्रामोद्योग आदि बहुत से छोटे और मध्यम उद्योग हो सकते हैं जिनके लिए गाँवों में पूर्व से ही क्षमतावान कुशलश्रम मिल सकता है। इससे स्थानीय उत्पाद गाँवों की आवश्यकताओं को पूर्ण कर उन्हें सुखी तो बनाएँगे ही साथ ही वहाँ के परिवारों की आय में भी वृद्धि होगी जो आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होगी। इसके लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों का गाँवों पर उचित ध्यान आवश्यक है। 2019 के बजट में बैम्बू, खादी, हनी (शहद) इत्यादि के लिए स्फूर्ति योजना चलाकर केन्द्र सरकार प्रोत्साहन प्रदान कर रही है। इसी प्रकार ग्रामीण संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए केन्द्र सरकार एक ऐसी योजना चला रही है जिसका नाम 'श्यामा प्रसाद मुखर्जी नेशनल रुर्बन (Rurban) मिशन' है इसमें ग्रामीण अच्छे वैशिष्ट्य को खोए बिना कुछ गाँवों के क्लस्टर बनाकर शहर की सुविधाएँ दी जाती है। इसी प्रकार 'आदर्श ग्राम योजना' के तहत सांसद एक-एक गाँव गोद लेकर वहाँ के सभी तरह के विकास का उत्तरदायित्व लेते हैं। 'ग्राम स्वराज अभियान' एक ऐसी योजना है जो केन्द्र एवं राज्य, एम.एलए., एम.पी., पंचायतीराज के सदस्य सभी की देख-रेख में चलाई जाती है। जिसमें 'सबका साथ, सबका विकास, सबका गाँव' घोष के द्वारा विकास किया जाता है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, सौभाग्य स्कीम, प्रधानमंत्री जन धन योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, मिशन इन्द्रधनुष आदि बहुत सी योजनाएँ गाँवों के विकास में योगदान कर रही हैं। वास्तव में हमारा ग्रामीण क्षेत्र अतिव्यापक है। सामाजिक, आर्थिक सेन्सस डेटा 2011 के अनुसार 73 प्रतिशत परिवार ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं। 60 प्रतिशत भारतीय जनसंख्या कृषि में संलग्न है जिसका जी.डी.पी. में योगदान 18 प्रतिशत है। इस प्रकार योजनाएँ इस व्यापक क्षेत्र को पूर्णरूप से विकास के सार्थक आयाम देने के लिए सक्षम नहीं हो पा रही हैं। लेकिन दृष्टि उत्तम है तो सृष्टि भी उत्तम होगी।

ग्राम विकास के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है ग्रामों की शिक्षा जो ग्राम स्वावलम्बन पर आधारित हो। पाठ्यक्रम वहाँ की चारों ओर की विशेषताओं के अनुसार बनाया जाना चाहिए, जिसमें वहाँ कौनसी फसलें पैदा होती हैं, वहाँ की वनस्पति कैसी है, भूगार्भिक विशेषताएँ क्या है, इन सब पर आधारित रोजगार स्वावलम्बन की शिक्षा दी जानी चाहिए। आजकल यह देखने में आता है कि ग्रामों की अपार प्राकृतिक संपदा को देखकर वहाँ बड़े-बड़े कल कारखाने लगा दिए जाते हैं। उनसे वहाँ के लोगों को रोजगार का कितना लाभ होता है यह तो प्रश्नवाचक है पर वहाँ की जलवायु का प्रदूषण एवं प्राकृतिक सम्पदा का क्षरण हो खेती भी अनुपजाऊ होने लगती हैं। ऐसे उद्योगों से ग्रामीण जन-जीवन प्रभावित हो जाता है। अत: इनको स्थापित करते समय गाँव की प्राकृत्तिक सुरक्षा निश्चित कर क्षतिपूर्ति भी इन्हीं उद्योगों पर उत्तरदायित्व के रूप में निश्चित की जानी चाहिए।

आज गाँवों में सड़कों, आवागमन के साधनों, विद्यालयों, चिकित्सालयों, कृषि विकास केन्द्रों की स्थापना कर विकास किया गया है और किया जा रहा है। ये सब मूलभूत बातें हैं। लेकिन विकास का अर्थ होगा वहाँ की हर प्रकार की प्रतिभाओं को आयाम मिले, बालकों को माध्यमिक शिक्षा हेतु दूर न जाना पड़े। चिकित्सालय में स्वच्छता हो तथा पूरा स्टाफ हो। वहाँ के पारम्परिक व्यवसायों को समृद्ध करने हेतु उचित शिक्षा तथा आर्थिक सहायता भी दी जावे। लोक कलाओं को विकास के उचित अवसर दिए जावें।

भारतीय गाँवों में प्रकृत्ति के साथ संतुलन कर चलने का प्राचीन काल से ही संस्कार विद्यमान है। वहाँ के जनजीवन में पर्व और उत्सव प्रकृत्ति और कृषि से जुड़े हैं। विवाहोत्सवों पर पवित्र मिट्‌टी खोदकर घर में लाई जाती है जिससे मंगल विधान प्रारम्भ होते हैं। जन्मोत्सव पर जल की पूजा कर लाकर उसको उत्सव के रूप में मनाया जाता है। बैशाखी और होली जैसे पर्व नवीन फसल के साथ जुड़े त्याग और कल्याण के प्रतीक हैं। अग्नि में नवीन फसल के अन्न की आहूति देता हुआ कृषक 'इदं न मम' संकल्प से वास्तव में अन्नदाता नाम को सार्थक करता है। गाँवों में श्रावण- भादो में एक उत्सव किया जाता था। जिसमें बहुत लम्बे बाँस पर एक ध्वजा लगाकर पशुओं को उसकी परिक्रमा करवाई जाती थी जिसमें गाँव व पशुधन की सुरक्षा के भाव का आकाशीय शक्ति से मानो प्रतिवचन लिया जा रहा हो ऐसा प्रतीत होता था। बाँस को 'निशान' नाम से कहा जाता है। निशान को हम चिह्न कहते हैं इसके पश्चात् मीठे चावल बनाकर संपूर्ण ग्राम उस प्रसाद को ग्रहण करता है।

आशय यह है कि जब हम विकास की बात करते हैं तो उस समय केवल उन्नत जीवनस्तर हमारे मन में होता है जो कि सुविधाओं से प्राप्त होता है। जीवन स्तर की इस अनन्त दौड़ में हम क्या खो रहे हैं यह भान हमें नहीं होता फलतः

वास्तव में ग्रामीण संस्कृति वहाँ का रहन-सहन एवं जन-जीवन एक दूसरे की सहायता सहयोग और आत्मीयता पर आधारित है। वहाँ के पारम्परिक व्यवसायों से उत्पन्न वस्तुएँ और सेवाएँ परस्पर संतुष्टि और खुशी प्रदान करने वाली है। अतः कुम्हार, लोहार, दर्जी, बढ़ई, बुनकर, सुनार एवं अन्य पारम्परिक पारिवारिक हुनर पर आधारित व्यवसायों को समृद्ध करने हेतु आधुनिक सहायता दी जानी चाहिए जिससे न केवल गाँव के परिवारों को कार्य मिलेगा अपितु वहाँ के बेरोजगारों का नगर और महानगरों की ओर पलायन भी रुकेगा।

भौतिक, नैतिक, मानसिक विकृतियाँ हमारे समक्ष आने लगती हैं जिनका उपचार हम उपरी रूप से दमनात्मक दृष्टि से करते हैं चाहे वह चिकित्सकीय हो, चाहे वह दण्डात्मक हो और चाहे विभिन्न यन्त्रों और उपकरणों का विकास हो पर वे जड़ को स्वस्थ नहीं कर पाते फलतः अन्य विकृतियाँ फैलती हैं।

इसलिए भारतीय ग्राम यहाँ के जन-जीवन में हमारी संस्कृति रची बसी है। युग के साथ परिवर्तन भी संस्कृति का ही एक तत्त्व है किन्तु वह सार्थकता लिए हुए होना चाहिए। हमें विकास के साथ किन-किन बातों को अपनाना चाहिए और किन-किन को छोड़ना चाहिए यह चिन्तन परमावश्यक है इस प्रसंग में भारतीय संस्कृति के काव्य ऋषि कालिदास ने बहुत अच्छी बात कही है-

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।।

(मालविकाग्नि मित्रम्/1/2)

अर्थात् न तो पुराना होने से सब कुछ अच्छा है और न ही नया होने से सब बुरा है। बुद्धिमान् लोग नए और पुराने दोनों की समीक्षा कर सार को ग्रहण करते हैं। पर मूर्ख लोग दूसरों पर बिना विचारे विश्वास करते हैं और अनुचित करते हैं। इसलिए भारतीय गाँवों की प्रकृत्ति का वैशिष्ट्य वहाँ की जलवायु, वहाँ के पारम्परिक व्यवसाय वहाँ के मनोरंजन की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, खेलकूद इन सब बातों को परखकर स्थानीय वैशिष्ट्य के अनुसार ही शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाकर अध्ययन की सुव्यवस्था की जाए और इसके अनुसार ही विकास की योजनाओं को क्रियान्वित किया जावे। जो प्राचीन कुछ ऐसा है जो कि अनुचित है जैसे विभिन्न कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ आज भी प्रचलित दिखाई देती हैं, उसके रोकथाम के प्रभावी उपाय भी कर विकास को अग्रसर करना चाहिए। लेकिन जो कुछ वहाँ अच्छा है आत्मप्रसन्नता और सहजता-सरलता, सहयोग, श्रम की महत्ता, पारम्परिक व्यवसायों की संस्कृति, त्याग, एक दूसरे के प्रति संवेदनशीलता, अकृत्रिमता, दया, प्रकृति पूजा आदि का सांस्कृतिक पर्यावरण है। इसका संरक्षण करते हुए ही विकास होना चाहिए। उस विकास से विस्फोटक दुष्प्रभाव न निकलकर दीर्घगामी प्रसन्नता, खुशी, अच्छाई के स्वर निकलने चाहिए। तभी वह भारतीय ग्रामों के लिए सार्थक विकास सिद्ध होगा। ❑

वर्तमान कृषक-हितैषी योजनाएँ

डॉ. सुशील कुमार विस्सु
सहआचार्य गणित
राजकीय महाविद्यालय,
कुशलगढ़ (राज.)

भारत गाँवों का देश है और गाँव की पहचान कृषक और कृषि से है। गाँवों में रहने वाले लाखों मेहनतकश किसान भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, फिर भी आजादी के लगभग 75 वर्षों बाद भी उनका कल्याण और आत्मनिर्भरता एक स्वप्न जैसा लगता है। हमारे मस्तिष्क में आज भी किसान की छवि फटे-पुराने कपड़े पहने कच्ची झोपड़ी में रहने वाले एक दुबले पतले व्यक्ति की ही है। स्वतन्त्रता के पश्चात किसानों और ग्रामीण विकास हेतु देश में आर्थिक नियोजन प्रणाली के आरम्भ से ही पंचवर्षीय योजनाओं में इन्हें सदैव प्राथमिकता प्रदान की गई। इसका एक प्रमुख कारण किसान और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का देश की अर्थव्यवस्था में विशेष महत्त्व एवं योगदान का होना है। कृषि क्षेत्र और ग्रामीण लघु उद्योगों से प्राप्त उत्पादन बढ़ाने और कृषक के हितों को सुनिश्चित करने हेतु नियोजन काल से ही भारत में अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएँ चलाई गई, परन्तु किसान और ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक स्तर में कोई सन्तोषजनक सुधार नहीं हो पाया। आज भी किसान आत्मनिर्भर नहीं है और आर्थिक परेशानियों के चलते आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है। आज भी किसान गाँव से पलायन कर शहरों की ओर उन्मुख है तथा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरी करने की जद्दोजहद में लगा है। आज भी किसान वर्ग खेती जैसे उत्तम व्यवसाय को छोड़कर दूसरों की नौकरी करने जैसे व्यवसाय में अपनी संतान के लिए प्राथमिकता देने पर मजबूर हैं। इन सबका कारण किसान के कृषि व्यवसाय में आमदनी का कम होना, लाभ कम और जोखिम अधिक होना और आजीविका की अनिश्चितता होना है। यह शासन की जिम्मेदारी बनती है कि वह कृषक और कृषि के महत्त्व स्थापित करने के लिए कल्याणकारी और कृषक हितैषी योजनाओं तथा कार्यक्रमों की न केवल घोषणा करें अपितु इनके क्रियान्वयन सही रूप में होने को भी सुनिश्चित करे।

प्राचीन काल में कृषि को एक उत्तम व्यवसाय माना जाता था और किसान को सम्मानजनक स्थान भी था। किसान अपनी भूमि का मालिक और आत्मनिर्भर था। ब्रिटिश काल और उससे पूर्व के शासकों ने किसान की भूमि को राजकोष भरने के लिए अपनी आय का स्रोत बनाने हेतु इच्छानुसार परिवर्तित किया। भारत का किसान जो पहले अपनी जमीन का प्रभुसत्ता-सम्पन्न स्वामी था, वह भू-राजस्व वसूली का स्रोत बनकर रह गया। जमींदारों का एक ऐसा वर्ग इस काल में खड़ा हो गया जो किसानों की आर्थिक दशा एवं प्राकृतिक प्रकोप की परवाह न करके उनसे जबरदस्ती भू-राजस्व वसूली का कार्य करता था। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान देशभक्त नेताओं ने किसानों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए अनेक प्रयास किये। कई किसान आन्दोलन भूमिहीनों और किसानों के कल्याण करने के उद्देश्य हेतु हुए। देश की आजादी के बाद किसानों के हितों के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, पंचायती राज व्यवस्था, सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना और कृषि सुधार हेतु कार्यक्रम और योजनाएँ लागू की गई। लघु एवं सीमान्त कृषकों तथा कृषि मजदूरों के लिए कार्यक्रम, निर्धनता दूर करने हेतु एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीनों के लिए रोजगार गारंटी कार्यक्रम आदि अनेक

प्रयास विगत वर्षों में कृषकों के हितों के लिए किए गये । वर्तमान सरकार ने कृषक हितों को प्राथमिकता देने की बात कहते हुए 2020 तक किसानों की आय दुगुनी करने का लक्ष्य रखा है। इस लक्ष्य की समय रहते पूर्ति हेतु उचित नीतियाँ और व्यावहारिक कार्यक्रम लागू करने के लिए उचित बजट आवंटन भी किया गया है। किसानों की आय दोगुनी करने के उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने सात बिंदुओं की रणनीति बनाई है, जिसमें किसानों की आय बढ़ाने के विभिन्न महत्त्वपूर्ण तथा संभावित घटक शामिल किए गए हैं। इनपुट लागत के प्रभावी प्रयोग के साथ कृषि भूमि के प्रति इकाई उत्पादन को बढ़ाना (कटाई के बाद नुकसान को कम करना तथा मूल्यवर्द्धन), बड़े जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करते हुए कृषि विपणन में सुधार और विभिन्न आनुषंगिक गतिविधियों (बागवानी, पशुपालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन तथा एकीकृत खेती) के प्रोत्साहन पर विशेष जोर देना इस रणनीति के प्रमुख बिन्दु हैं। वर्तमान में कृषि विकास और किसानों के कल्याण के लिए कृषक- हितैषी मुख्य योजनाएँ निम्नलिखित हैं -

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई) - यह योजना कृषि और उससे जुड़े सहायक क्षेत्रों में भारत सरकार की एक योजना है, जिसकी शुरूआत 2007-08 में की गई थी। इस योजना का उद्देश्य उत्पादन में बढ़ोतरी करना और किसानों की आमदनी को बढ़ाना है। इस योजना के तहत कृषि एवं सबंधित क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश को बढ़ाने के लिए राज्यों को इंसेंटिव देना, जिलों एवं राज्यों के हिसाब से कृषि योजना की तैयारी, प्रौद्योगिकी और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने की बात है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) - इस योजना का आरंभ 2016 में किया गया जिसका उद्देश्य फसलों के नुकसान की स्थिति में व्यापक बीमा कवर मुहैया कराकर किसान की आमदनी को स्थिरता प्रदान करना था। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का योगदान खाद्य सुरक्षा, फसलों के विविधीकरण और कृषि क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा और विकास को बढ़ावा देने के अलावा किसानों को उत्पादन संबंधी जोखिम से सुरक्षा प्रदान करना है।

राष्ट्रीय कृषि बाजार (एनएएम) - राष्ट्रीय कृषि बाजार देशव्यापी इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग पोर्टल हैं, जो कृषि कमोडिटी के लिए एकीकृत राष्ट्रीय बाजार तैयार करने के मकसद से मौजूदा मंडियों के नेटवर्क से जुड़ा है। इस पोर्टल से जुड़ी तमाम सूचनाओं और सेवाओं के लिए एकल खिड़की सेवा है जिससे राज्य अपने कृषि-मार्केटिंग संबंधी नियमों के अनुसार कृषि मार्केटिंग के कामकाज को पूरा करते हैं। राष्ट्रीय कृषि बाजार ऑनलाइन ट्रेनिंग प्लेटफार्म के जरिए एकीकृत बाजार तैयार कर राज्य और केन्द्र दोनों स्तरों पर उपभोक्ताओं को सही कीमत पर उत्पाद और बढ़ी कीमत का फायदा किसानों को मिले, यह सुनिश्चित करता है। यह एकरूपता को बढ़ावा देकर, एकीकृत बाजार प्रक्रियाओं को सरल बनाता है। यह वास्तविक मांग और पूर्ति के आधार पर कीमतों की वसूली को बढ़ावा देता है ओर नीलामी की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाकर किसानों को देशभर के बाजार उपलब्ध एवं ऑनलाइन पेमेंट की सुविधा प्रदान करता है।

मृदा गुणवत्ता प्रबंधन (एसएचएम) - खेती को उपजाऊ, टिकाऊ और जलवायु के लिहाज से अनुकूल बनाने के मकसद से उत्पादक सतत कृषि राष्ट्रीय मिशन को लागू किया गया, जिसके तहत संसाधनों का संरक्षण, सॉयल हेल्थ मैनेजमेंट (मृदा की गुणवत्ता का प्रबंधन) से जुड़े चलन को अपनाना, जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना, जैसे लक्ष्य रखे गये हैं। इसका मकसद रासायनिक खाद के संतुलित इस्तेमाल के जरिए एकीकृत पोषण प्रबंधन को बढ़ावा देना, मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बेहतर बनाने के लिए किसानों की मिट्टी की जाँच, खाद की जाँच संबंधी सुविधाओं को मजबूत बनाना है। देश के किसानों के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना 2019 में आरम्भ की गई। प्रत्येक दो वर्ष में मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्त्वों की कमी के प्रबन्धन का सुझाव, सही मात्रा में खाद का प्रयोग आदि के बारे में सुझाव किसानों को देकर उनकी पैदावार-वृद्धि से अतिरिक्त आय के उद्देश्य से यह कार्ड प्रदान किया गया है। इससे सतत कृषि विकास में सहायता का उद्देश्य भी किसानों के हित के लिए रखा गया है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) - इस योजना का मुख्य उद्देश्य खेतों के स्तर पर सिंचाई में उचित निवेश सुनिश्चित करना, अधिक से अधिक जमीन को सिंचाई के दायरे में लाना, पानी की बर्बादी को रोकने के लिए खेतों में पानी का संतुलित प्रयोग पक्का करना और पानी की बचत की अन्य

प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना है। इसके अलावा भूजल स्तर को बढ़ाना, ट्रीटमेंट वाले नगर निकायों के पानी का खेती के लिए इस्तेमाल कर जल-संरक्षण की टिकाऊ प्रणालियों को पेश करना और सिंचाई प्रणाली में ज्यादा से ज्यादा निजी निवेश को आकर्षित करना भी इस योजना के लक्ष्यों में सम्मिलित है। इस योजना में जल-संसाधन, नदी-विकास और गंगा-सफाई मंत्रालय का त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (AIBP), भूमि संसाधन विभाग का एकीकृत जल-विभाजन-प्रबंधन कार्यक्रम और कृषि व सहकारी विभाग का ऑन फार्म जल प्रबंधन जैसी मौजूदा योजनाओं को समाहित करने की बात पर भी विचार है।

परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY) - कृषि उत्पादन को बेहतर बनाने की खातिर मिट्टी और पानी संबंधी मसलों को सही करने के लिए परंपरागत कृषि-विकास-योजना की शुरूआत की गई है। भारत में प्रचलित जैविक खेती प्रणाली को सहारा देने और उसे बेहतर बनाने का काम यह योजना कर रही है। सामूहिक खेती के ढाँचे के तहत कम से कम 50 किसान एक समूह बनाकर 50 एकड़ जमीन पर जैविक खेती कर सकेंगे, जिसके लिए सरकार बजट का प्रावधान करती है।

प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना - इस योजना का उद्देश्य विपणन संबंधी सहायता के साथ प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन की सुविधाएँ प्रदान कर किसानों का कल्याण करना और उन्हें समृद्ध बनाना है। इस योजना के तहत फूड पार्क स्थापित और संचालित करना भी सम्मिलित है। यह एकीकृत कोल्ड बेन एवं मूल्यवर्धन अवसंरचना को विस्तार दे रही है। खाद्य प्रसंस्करण एवं संरक्षण क्षमताओं में विस्तार कर रही है और कृषि कलस्टरों के लिए बुनियादी ढाँचा तैयार कर रही है। यह किसानों को फायदा पहुँचाने के लिए सभी प्रकार के लिंकेज भी विकसित कर रही है। कर प्रोत्साहन, 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, कृषि प्रसंस्करण इकाइयों को आसान कर्ज आदि अन्य कार्य इस योजना के अन्तर्गत किये जा रहे हैं।

> **आज भी किसान वर्ग खेती जैसे उत्तम व्यवसाय को छोड़कर दूसरों की नौकरी करने जैसे व्यवसाय में अपनी संतान के लिए प्राथमिकता देने पर मजबूर हैं। इन सबका कारण किसान के कृषि व्यवसाय में आमदनी का कम होना, लाभ कम और जोखिम अधिक होना और आजीविका की अनिश्चितता होना है। यह शासन की जिम्मेदारी बनती है कि वह कृषक और कृषि के महत्त्व स्थापित करने के लिए कल्याणकारी और कृषक हितैषी योजनाओं तथा कार्यक्रमों की न केवल घोषणा करें अपितु इनके क्रियान्वयन सही रूप में होने को भी सुनिश्चित करे।**

ऑपरेशन ग्रीन्स योजना - इस योजना के अन्तर्गत टमाटर, प्याज तथा आलू जैसी सालभर वांछित सब्जियों की फसलों के विपणन के लिए कृषि लॉजिस्टिक्स, प्रसंस्करण सुविधाओं एवं पेशेवर प्रबंधन को बढ़ावा देना है जिससे किसानों एवं उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा हो सके।

हरित क्रान्ति कृषोन्नति योजना - कृषि क्षेत्र में अंग्रेजी स्कीम के अन्तर्गत 11 योजनाएँ सम्मिलित है जो समग्र और वैज्ञानिक तरीके से कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास के उद्देश्य से संचालित हो रही है। ये योजनाएँ निम्नलिखित है -

- बागवानी के एकीकृत विकास के लिए मिशन (MIDH)
- तिलहन और तेल पाम पर राष्ट्रीय मिशन (NMOOP)
- सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन (NMSA)
- कृषि विस्तार पर उपमिशन (SMAE)
- बीज तथा पौध रोपण सामग्री पर उपमिशन (SMSQ)
- कृषि मशीनीकरण पर उपमिशन (SMAM)
- पौध संरक्षण और पौधों के अलगाव पर उपमिशन (SMPPQ)
- कृषि गणना, अर्थव्यवस्थाएँ तथा सांख्यिकी पर एकीकृत योजना (ISACES)
- कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना (ISAC)
- कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना (ISAM)
- राष्ट्रीय ई-गर्वेनेन्स (NEGA-A) किसान और किसान केन्द्रित सेवाओं के अन्तर्गत।

इन योजनाओं के अलावा किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय डेयरी योजना- I (NDP-1), डेयरी विकास राष्ट्रीय कार्यक्रम (NPDD), डेयरी उद्यमिता विकास योजना (DEDS), राष्ट्रीय गोकुल मिशन और नीली क्रांति जैसे कार्यक्रमों और अभियानों को किसानों को फायदा पहुँचाने के लिए लागू किया गया है। बागवानी, पशुपालन और मछली-पालन आदि को कृषि से जोड़कर किसानों की आय बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अलावा ग्रामीण कृषि मंडियाँ किसानों को अपना माल सीधे उपभोक्ताओं और बड़े खरीददारों को बेचने की सुविधा प्रदान करने के लिए बनाई गई है। किसानों की आय को दो गुना करने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर 'प्रति बूँद अधिक फसल', प्रत्येक खेत की मिट्टी की सेहत के आधार पर गुणवत्तापूर्ण बीजों और पोषक तत्त्वों का प्रावधान, फसल कटाई के बाद पैदावार का नुकसान रोकने के लिए वेयर हाउसिंग और कोल्ड चेन्स, खाद्य प्रसंस्करण के द्वारा मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना, ई-प्लेटफार्म की स्थापना, नई फसल बीमा योजना एवं पोल्ट्री, मधुमक्खी-पालन और मत्स्य-पालन जैसी सहायक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने जैसे कार्य किये जा रहे हैं ताकि देश का किसान सम्पन्न और सशक्त बन भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ को पुष्ट करता रहे। भारतीय किसान को सक्षम, समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाकर ही हम श्री लालबहादुर शास्त्री के 'जय किसान' के स्वप्न को साकार कर सकते हैं। ❑

भारत अपने चंद शहरों में नहीं वरन् 6 लाख गाँवों में बसता है, लेकिन हम शहरवालों का खयाल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ है। कभी कभी लगता है कि हमें 'शहरों वाला भारत' और 'गाँवों वाला भारत' में से एक को चुनना है।

ग्राम विकास – शिक्षक की भूमिका

संदीप जोशी

सदस्य- NCTE

अपने देश में 5 लाख 79 हजार से ज्यादा गाँव हैं। देश की 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। प्राचीन काल में गाँव सुदृढ़, सम्पन्न थे, तब भारत सोने की चिड़िया कहलाता था।

वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश में गाँवों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। गाँववासियों को रूढ़िवादी एवं अंधविश्वासी माना जाता है। पूज्य महात्मा गाँधी कहते थे कि 'भारत अपने चंद शहरों में नहीं वरन् 6 लाख गाँवों में बसता है, लेकिन हम शहरवालों का खयाल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ है। कभी कभी लगता है कि हमें 'शहरों वाला भारत' और 'गाँवों वाला भारत' में से एक को चुनना है।

कई विद्वान गाँवों की अशिक्षा एवं पुरातनता को ही देश की समस्याओं का प्रमुख कारण बताते हैं। यह सच है कि गाँवों में आज भी कुछ मात्रा में अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास आदि हैं। किन्तु इसके अलावा भी गाँवों में बहुत कुछ है, जिसे वे नहीं जानते अथवा नहीं जानना चाहते।

सच तो यह है कि इस देश की संस्कृति को गाँव एवं गाँव के लोगों ने ही बचाया हुआ। यह स्पष्ट है कि भारत यदि आज भी भारत है, तो वह गाँवों के कारण ही है।

भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्य ग्राम्य जीवन में ही स्थायी रूप से बसे हैं। शहरों के पढ़े- लिखे एवं आधुनिकतावादियों से ग्राम्य जन कहीं अधिक परिपक्व, धैर्यशाली, निष्ठावान, परिश्रमी, संतोषी एवं समझ वाले हैं। जर्मन दार्शनिक शापेन हॉवर ने लिखा है कि 'भारत का एक निरक्षर ग्रामीण भी पश्चिम के बड़े से बड़े दार्शनिक से अधिक प्रज्ञावान है।' पूज्य गाँधीजी भी कहते थे कि 'भारत की आत्मा गाँवों में बसती है।' विश्ववंद्य स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि 'भारत को जगाना है, तो भारत के गाँवों को जगाओ।'

अत्यन्त प्राचीन काल से ही गाँव हमारी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना का आधार रहे हैं। हर गाँव एक स्वावलम्बी एवं सृजनशील इकाई रहा। भारत के ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, समृद्धि एवं संस्कारों के द्वार गाँवों ने ही खोले। उन गाँवों की दशा आज ठीक नहीं है। भारतमाता ग्रामवासिनी कहने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कल्पना आज धुंधली पड़ती जा रही है क्योंकि आजादी के 73 वर्षों में तो जैसे गाँवों की खुशहाली को ग्रहण लग गया है। गाँव शहरीकरण की चपेट में आकर उजड़ रहे हैं, गाँवों की अर्थव्यवस्था के आधार खेती एवं पशुधन की हालत चिन्ताजनक है। संसाधनों की कमी, मौसम की बेरुखी एवं शासन की गलत नीतियों की मार झेल रही कृषि आज चौपट होने के कगार पर है और अपना पेट पालने की जद्दोजहद में किसान लाचार है। इसी का परिणाम हुआ कि गाँव आज युवा शून्य होते जा रहे हैं। गाँवों में या तो बच्चे मिलते हैं या काम करने में सक्षम न रहे बुजुर्ग। 15 से 50 वर्ष तक की अधिकांश युवा पीढ़ी शहरों की तरफ पलायन कर रही है। इससे गाँव तो समस्याग्रस्त हो ही रहे हैं। शहरों पर भी जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। इससे वहाँ नये प्रकार की सामाजिक एवं पर्यावरण सम्बन्धित समस्याएँ पैदा हो रही हैं।

विज्ञान, संचार, रक्षा एवं अर्थव्यवस्था आदि में नये-नये प्रतिमानों के बावजूद ग्रामवासिनी भारत माँ आज बेहाल है। पिछले कुछ वर्षों में विकास की हमारी नीतियों ने इंडिया और भारत के बीच की खाई को और चौड़ा किया है। गाँधी जी और विनोबा भावे ने जिस आत्मनिर्भर, खुशहाल, सुदृढ़ ग्राम व्यवस्था का सपना बुना था, वह तो मानो बिखर गया- विकास का यह स्वरूप बेहद आपत्तिजनक एवं खतरनाक है कि विकास के नाम पर गाँवों को शहर बनाने का प्रयत्न हो रहा है। त्रुटिपूर्ण नीतियों के कारण उपेक्षा, अभाव, निर्धनता, अस्तव्यस्तता और सन्नाटा ग्राम जीवन के स्थायी अंग बनते जा रहे हैं। गाँवों के साथ त्रासदी यह हुई कि वे शहर तो बन नहीं पाए और अपना मूल स्वरूप ग्राम भी नहीं रख पाए। आज सामान्यत: गाँव का जो दृश्य दिखता है वह गंदगी का ढेर, बेतरतीब विकास और निर्माण, फटेहाल किसान एवं गंदगी में खेलते बच्चे। इसलिए अवसर मिलते ही गाँव का व्यक्ति चल देता है शहर की ओर। हाँ कुछ गाँवों ने अवश्य अपने आप को समय के साथ ढाला है एवं आदर्श ग्राम का स्वरूप देश के सामने रखा है।

गाँवों को भारत की आत्मा बताते हुए महात्मा गाँधी ने यह भी कहा था कि 'अगर गाँवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जाएगा। उस हालत में भारत, भारत नहीं रहेगा। उसे दुनिया को जो संदेश देना है, वह संदेश वह खो देगा।' इसलिए भारत का यदि वास्तव में विकास करना है, उसे उन्नति के शिखर पर पुन: पहुँचाना है, तो उसका मार्ग गाँव की ओर से ही तय करना होगा। ग्राम्य जीवन को स्वावलम्बी, स्वाभिमान, सृजनशील और समृद्ध बनाना होगा। ग्राम से शहरों की तरफ पलायन रोकना होगा और ग्राम जीवन की युगानुकूल पुनर्रचना करनी होगी। इस दृष्टि से समाज के सभी वर्गों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है स्वाभाविक ही शिक्षक की भूमिका भी बहुत महत्त्व की है।

ग्राम विकास का भारतीय दर्शन

भारतीय समाज जीवन में ग्राम सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण घटक रहे हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ग्राम के बारे में विस्तृत विवरण मिलता है। वे लिखते हैं कि गाँव में 100 से 500 तक घर हों, जिनमें अधिकांश श्रमजीवी और किसान हों। गाँव परस्पर 2-3 मील के फासले पर हो। मार्कण्डेय पुराण में गाँव को इस प्रकार परिभाषित किया गया है। तथा-

शूद्रजनं प्रायाः सुसमृद्ध कृषीवलाः।
क्षेत्रोपयोगे भू मध्ये, वसति ग्राम संज्ञिता।।

[अध्याय 48]

अर्थात् जहाँ दस्तकार, श्रमिक तथा कृषक निवास करते हों तथा जहाँ सारी भूमि जोतने योग्य हो, ऐसे जनसमूह एवं उनके रहने के स्थान को ग्राम कहते हैं। भारत में ग्राम रचना स्वायत्त थी, स्वायत्तशासी ग्राम समुदाय प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था के नींव के पत्थर थे। ग्राम समुदाय एवं ग्राम सभाओं की सुदृढ़ व्यवस्था से ग्राम की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती थी तथा ग्रामीण जीवन परस्पर पूरक एवं स्वायत्त था। ग्राम में लोक कल्याण की परम्परा थी।

अवयस्क बालक के माता-पिता के जीवित न रहने की स्थिति में उसकी सम्पत्ति एवं शिक्षा की व्यवस्था गाँव के बुजुर्ग लोग करते थे। भारतीय ग्राम जीवन में राष्ट्रीयता का समावेश था तथा प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक जीवन को स्वजीवन एवं पारिवारिक जीवन की तुलना में प्राथमिकता देता था। भारत में परिवार हमेशा सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई के रूप में विद्यमान रहा। ग्राम विकास की सफलता, परिवार इकाई एवं ग्राम संगठन पर ही निर्भर थी। प्रकृति से प्रेम, मानव मात्र पर दया, मानव मात्र की सेवा, वसुधैव कुटुम्बकम्, स्वभाव से स्वतंत्र, आत्म एवं सामाजिक नियंत्रण को सहज रूप से अंगीकार करना, त्याग भाव, आपसी सहयोग तथा मनसा, वाचा, कर्मणा आत्मा के श्रेष्ठ आधार पर चलने वाला ग्रामवासी दुनिया का आदर्श बना। प्राचीन भारत में ग्राम विकास का दर्शन सामाजिकता, नैतिकता एवं स्वदेशीय संसाधनों पर आधारित था, जिसमें सहयोग, स्नेह, सौहार्द का सहयोग बना रहता था।

ग्राम विकास की अवधारणा

ग्राम विकास का काम नया नहीं है। आजादी पाने के कई वर्ष पूर्व से यह काम होता रहा है। अनेक निष्ठावान एवं तपस्वी महानुभावों ने अपना पूरा जीवन ग्राम विकास में लगाया है। अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी कार्य इस दिशा में हो रहे हैं।

आजादी के बाद की सभी सरकारों ने ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राथमिकता दी। केन्द्र में अलग से ग्रामीण विकास मंत्रालय बनाकर इस हेतु विभिन्न सरकारी योजनाएँ बनाई जाती रही हैं, लेकिन अपेक्षित प्रगति हम नहीं कर पाए हैं। ग्राम्य जीवन के वर्तमान स्वरूप को देखकर लगता है कि हमें भारतीय जीवन पद्धति के आधार पर अपने गाँवों के विकास की योजना बनानी होगी। विकास को केवल आर्थिक विकास तक सीमित रखकर ग्रामीण जीवन में सुख, शान्ति, समृद्धि नहीं लायी जा सकती। ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षा, स्वावलम्बन, संस्कार, श्रम, पारिवारिक जीवन, स्वास्थ्य, सदाचार एवं परस्पर पूरकता की दिशा प्रशस्त करनी होगी।

ग्राम विकास का अर्थ है गाँव का सम्पूर्ण एवं सर्वांगीण विकास। पिछले एक दशक में देश के मानचित्र पर ऐसे कई गाँव उभरे हैं जहाँ के लोगों ने अपने संकल्प से गाँवों का वातावरण बदला है। सामूहिकता एवं स्वावलम्बन के आधार पर ये गाँव खुशहाली की राह चल रहे हैं। इस दृष्टि से रालेगण सिद्धि एवं चित्रकूट के प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं। नानाजी देशमुख के प्रयासों से विकसित चित्रकूट के ग्राम विकास का कार्य देखने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. कलाम स्वयं आए थे।

ग्राम विकास और शिक्षक की भूमिका

ग्राम विकास की आवश्यकता एवं अवधारणा को समझने के पश्चात् यह तो स्पष्ट है कि यदि भारत का विकास करना है, उसे पुनश्च विश्वगुरु की भूमिका में लाना है, तो भारत के गाँवों का विकास आवश्यक है। ग्राम विकास की इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यह कहा जाए कि शिक्षक केन्द्रीय भूमिका में है, तो गलत नहीं होगा। शिक्षक सम्पूर्ण समाज की श्रद्धा का, सम्मान का स्वाभाविक पात्र है। गाँव और देश की भावी पीढ़ी को गढ़ने, उसे सुयोग्य बनाने का गुरुतर दायित्व उसके कंधों पर है।

शिक्षक अपने आप में एक ऐसी संस्था है, जो देश के प्रत्येक गाँव तक उपलब्ध है। अत्यन्त दूरस्थ छोटे गाँव जहां सरकारी शालाएँ नहीं हैं, वहाँ भी स्थानीय योजना से निजी स्तर पर शिक्षण कार्य चलता है। ग्राम विकास की दृष्टि से सरकारी एवं निजी दोनों शिक्षक महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षक होने का स्वाभाविक अर्थ है कि वह शिक्षित है, फिर समाज की श्रद्धा का केन्द्र है। विद्यार्थी वर्ग तो उससे प्रेरणा लेकर अनुकरण करता ही है, उससे बड़ी आयु के गाँव के लोग भी उसका, उसकी बात का सम्मान करते हैं। अभिभावक सम्पर्क के नाते से गाँव एवं गाँव वालों की प्रकृति का ज्ञान शिक्षक को होता है। सबसे बड़ी बात गाँव की भावी पीढ़ी शिक्षक के पास होने से यदि शिक्षक चाहे तो ग्राम विकास के कठिन लक्ष्य को अपने संकल्प से साध सकता है।

ग्राम विकास के प्रमुख आयाम हैं – शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वावलम्बन। इन सभी की पूर्ति में शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। देशभर में अनेक स्थानों पर शिक्षकों ने अपनी इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति के सहारे गाँवों का वातावरण परिवर्तन करके उन्हें खुशहाली के पथ पर अग्रसर किया है। यहाँ विस्तार से उपर्युक्त तीनों आयामों के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा।

शिक्षा युक्त गाँव

ग्राम विकास की पहली शर्त है गाँव में शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो एवं सबके लिए शिक्षा उपलब्ध हो। यह पहला बिन्दु शिक्षक के नियमित कार्य से सम्बन्धित ही है। अपने सम्पर्क में आने वाले विद्यार्थी को तो योग्य एवं संस्कारयुक्त शिक्षा देनी ही है, साथ ही एक आदर्श के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करना है। वास्तव में अपने आचरण से शिक्षा दे वही आचार्य है। विद्यालय में अध्यापन कार्य के अलावा ग्राम विकास की दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में कुछ और कामों की चिंता एवं उस दिशा में आवश्यक कार्य कर सकता है। जैसे गाँव पूर्ण साक्षर हो, गाँव में विद्यालय सुव्यवस्थित हो, अभिभावक शिक्षा के प्रति जागरूक हों, अनौपचारिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था हो इत्यादि। इसके अलावा ग्रामवासियों को पंचायतीराज, शासकीय योजनाओं, सहकारी संस्थाओं आदि की पूर्ण जानकारी हो। गाँव में वाचनालय, पुस्तक बैंक, शिक्षा सहायता केन्द्र आदि के लिए प्रतिभाओं का चयन कर उन्हें प्रेरित करना आदि। इस प्रकार के शैक्षिक प्रयत्नों से पूरे गाँव का वातावरण शिक्षामय हो सकता है।

गाँव के पुनरुत्थान में शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है। गाँव के हर व्यक्ति के मन में गाँव की हर चीज के प्रति श्रद्धा–प्रेम जगाने का कार्य भी वास्तव में शिक्षा ही है। गाँव की हर चीज अर्थात् गाँव के जल, जमीन, जंगल, जन एवं जानवर। गाँव के लोगों के मन में ग्राम्य संस्कृति एवं पाँच 'ज' के प्रति प्रेम एवं कर्तव्य भाव का जागरण करने का महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षक कर सकता है।

स्वावलम्बी गाँव

शिक्षा के बाद ग्राम विकास का अगला महत्त्वपूर्ण आयाम है स्वावलम्बन। गाँव का आर्थिक विकास करने के लिए स्वावलम्बन अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन भारत में गाँव स्वावलम्बी एवं स्वायत्त थे। इसी कारण गाँव विकास का केन्द्र थे। गाँव के स्वावलम्बन का आधार है खेती एवं कुटीर उद्योग। गाँव को स्वावलम्बी बनाने का कार्य प्रत्यक्षत: तो शिक्षक का नहीं है तथापि इस दिशा में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। शिक्षक अपने सम्पर्क में आने वाले विद्यार्थियों की शहर जाकर काम माँगने की अपेक्षा गाँव में ही रहकर कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। इससे गाँव में स्वरोजगार बढ़ेंगे तथा गाँव स्वावलम्बी बनेंगे। गाँव का पैसा और गाँव की प्रतिभा गाँव में रहने से ग्राम विकास में सहायता मिलेगी।

शिक्षक स्वभाव से अध्ययनशील होता हैं। वह अपने व्यापक अध्ययन क्षेत्र में से ग्रामवासियों को कृषि क्षेत्र में हो रहे नवीन प्रयोगों की जानकारी देकर, विविध सरकारी योजनाओं की जानकारी देकर, बैंकों से ऋण लेने की प्रक्रिया में सहायता, मार्गदर्शन कर, सहकारी समितियों एवं स्वयं सहायता समूहों के गठन में सहायता कर, गाँव को स्वावलम्बी बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। ग्राम स्वावलम्बन के लिए जरूरी है कि गाँवों में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना गाँव में ही हो, गाँव की कारीगरी को प्रोत्साहित किया जाए, उन्हें सस्ती दरों पर ऋण, कच्चा माल एवं प्रशिक्षण दिया जाए, उत्पादित माल के विपणन की व्यवस्था हो तथा सहकारिता के आधार पर उद्योग डेयरी, गोशाला, फलोत्पादन, पशुपालन आदि का विकास हो और गाँव की अधिकांश आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो सकें, इन सब कार्यों में स्वयं की प्रेरणा के आधार पर शिक्षक श्रेष्ठ मार्गदर्शक, उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है। शिक्षक के द्वारा पढ़ाए हुए पुराने विद्यार्थी इसमें अनुशासित टीम की तरह कार्य करेंगे और स्वावलम्बी गाँव का सपना शिक्षक अपनी आँखों के सामने साकार होता देख सकेंगे।

स्वस्थ गाँव

ग्राम विकास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम है- स्वस्थ ग्राम। वैसे तो इस कार्य के लिए पृथक् से चिकित्सा विभाग है एवं इस दिशा में वे सजग भी रहते हैं। चिकित्सा विभाग एवं औषधालय का मुख्य कार्य बीमार व्यक्ति के इलाज का है किन्तु व्यक्ति बीमार ही न हो एवं छोटी-बड़ी समस्याओं का समाधान घर पर ही कर सके, इस दृष्टि से शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। विद्यालय में खेलकूद गतिविधियों एवं योग कक्षाओं के द्वारा शिक्षक स्वस्थ ग्राम की शुरूआत अपने विद्यालय से ही कर सकते हैं। प्रात:काल प्रार्थना सभा, प्रार्थना सभा में योग का अभ्यास एवं सायंकाल विद्यालय समय के पश्चात् खेलकूद मैदान में खेलों के आयोजन से विद्यार्थियों को शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाया जा सकता है। विद्यालय में योग सीखने वाले विद्यार्थी घर जाकर परिवार एवं मोहल्ले में योग, स्वास्थ्य आदि के बारे में जागरूकता निर्माण कर सकेंगे। प्रतिदिन सायंकाल एक-डेढ़ घंटे खेलने वाले विद्यार्थी स्वास्थ्य की दृष्टि से तो मजबूत होंगे ही, पढ़ाई में भी अच्छा प्रदर्शन कर पाएँगे। आखिर स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। शिक्षक अवकाश के दिन अथवा अनौपचारिक अभिभावक सम्पर्क के दौरान ग्रामवासियों को भी प्रात: भ्रमण, योग, स्वाध्याय, स्वच्छता आदि के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

यह प्रत्यक्ष अनुभव में आया है कि गाँव के लोगों का काफी पैसा छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए शहर आने-जाने, डॉक्टर की फीस एवं दवाइयों में खर्च होता है। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ही स्वास्थ्य शिक्षा एवं कार्यानुभव जैसे विषयों के अध्यापन के दौरान शिक्षक सामान्य बीमारियों की जानकारी, बचाव एवं घरेलू उपचार की जानकारी दे सकते हैं। गाँव में सहज रूप से उपलब्ध तुलसी, नीम, गो दुग्ध, गो मूत्र, हल्दी, सरसों, अरंडी, जामुन, बबूल जैसी सामग्री से अनेक बीमारियों के इलाज की जानकारी बालकों को दी जा सकती है जिनका वे अपने घर पर उपयोग कर सकेंगे। विद्यालय में औषधीय महत्त्व के पौधों की वाटिका विद्यार्थियों द्वारा ही विकसित की जा सकती है। ये तमाम सामान्य प्रयोग शिक्षक के सम्मान एवं गरिमा में तो वृद्धि करेंगे ही, साथ ही स्वस्थ गाँव के लक्ष्य को सुगम बनाएँगे। स्वस्थ गाँव हो सुदृढ़-विकसित गाँव होगा और तभी स्वस्थ भारत विकसित भारत बनेगा। ग्राम विकास के उपर्युक्त तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आयामों- शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वावलम्बन पर शिक्षक योग्य रीति से धैयपूर्वक प्रयत्न करें, तो ग्राम आधारित विकास रचना कठिन नहीं है। इन मुख्य आयामों के अतिरिक्त शिक्षक

गाँवों को भारत की आत्मा बताते हुए महात्मा गाँधी ने यह भी कहा था कि 'अगर गाँवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जाएगा। उस हालत में भारत, भारत नहीं रहेगा। उसे दुनिया को जो संदेश देना है, वह संदेश वह खो देगा।' इसलिए भारत का यदि वास्तव में विकास करना है, उसे उन्नति के शिखर पर पुनः पहुँचाना है, तो उसका मार्ग गाँव की ओर से ही तय करना होगा। ग्राम्य जीवन को स्वावलम्बी, स्वाभिमान, सृजनशील और समृद्ध बनाना होगा।

निम्न बिन्दुओं पर भी गाँव में जागरूकता, प्रेरणा, मार्गदर्शन का कार्य करके ग्राम विकास के कार्य को गति दे सकते हैं।

संस्कार युक्त गाँव

गाँव संस्कार युक्त बने तथा वहाँ जन जोवन में सहज रूप से परम्परागत भारतीय जीवन मूल्यों का प्रकटीकरण हो, अपने जीवन का उदाहरण खड़ा करके शिक्षक इस कार्य को सहजता से कर सकता है।

विद्यालय श्रद्धा का केन्द्र बने-शिक्षक

अपने मुख्य कार्य अध्यापन को पूरी श्रद्धा, पवित्रता एवं समर्पण भाव से निर्वाह करे, ताकि बालकों, अभिभावकों एवं अन्य ग्रामवासियों के विश्वास का केन्द्र शिक्षक एवं विद्यालय बने। ऐसा होने पर ही ग्रामवासी ग्राम विकास एवं परिवर्तन को सहज रूप से स्वीकार करेंगे एवं उत्साहपूर्वक ग्राम विकास में जुटेंगे।

नशा मुक्त गाँव

गाँव नशा मुक्त हो इस दिशा में जनजागरण हो तथा नई पीढी नशे से दूर रहे, इसकी प्रेरणा लगातार मिलती रहे। कुरीति मुक्त गाँव-गाँवों से सामाजिक कुरीतियाँ- दहेज प्रथा, बाल विवाह, मृत्युभोज, लिंग परीक्षण इत्यादि समाप्त हो। इस हेतु गाँव के विविध जाति-बिरादरी के प्रभावशाली लोगों को विश्वास में लेकर उन्हीं के माध्यम से प्रयत्न करना चाहिए। सामान्यतः गाँव के लोग धार्मिक स्वभाव के होते हैं एवं धर्म के प्रति अत्यन्त आस्था रखते हैं। ऐसे में सामूहिक चर्चा एवं परिवर्तन का केन्द्र मंदिर को भी बनाया जा सकता है। इस कार्य में योग्य संतों का भी सहयोग लिया जा सकता है। ऐसे में परिवर्तन सहजता से होगा क्योंकि उनकी बात को ग्रामवासी शीघ्रता से मानेंगे।

प्रदूषण मुक्त गाँव

सामान्यतः गाँव प्रदूषण मुक्त ही होते हैं। फिर भी पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से कुछ कार्य करने योग्य हैं। गाँवों में गोबर गैस, बायो गैस, धुँआ रहित चूल्हे एवं सौर ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाए। शिक्षक व विद्यार्थियों के माध्यम से हरित पट्टी विकास, वृक्षारोपण अभियान, प्लास्टिक निषेध, सार्वजनिक पेयजल स्रोत, सफाई, वर्ष में एक बार ग्राम स्वच्छता अभियान आदि कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं। जैविक खेतो एवं कूड़े-करकट से खाद बनाने की नवीनतम तकनीक की जानकारी ग्रामवासियों के को मिले, इस दृष्टि से भी शिक्षक सहायता कर सकते हैं।

सुविधा युक्त गाँव-गाँव में आधारभूत

सुविधाओं का विकास हो, इस हेतु गाँव के ही प्रबुद्ध-समझदार लोगों को प्रेरित कर सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों स्तरों पर प्रयत्न करना चाहिए। पेयजल, बिजली, सिंचाई, आवागमन के साधन, दूरसंचार, मिनी बैंक इत्यादि सुविधाओं के गाँव में होने पर ही शहरों की तरफ पलायन रोकने में सहायता मिलेगी। शिक्षक को इन बिन्दुओं पर केवल प्रेरक की भूमिका में रहना चाहिए एवं राजनीति का हिस्सा नहीं बने, इतनी सावधानी चाहिए।

संगठित गाँव-समरस गाँव

शिक्षा के सहारे एवं सबका विश्वास जीतकर धीरे-धीरे अस्पृश्यता निवारण के कार्य को आगे बढ़ाया जा सकता सब गाँव वालों में परस्पर प्रेम, सौहार्द एवं विश्वास का वातावरण बने, इस हेतु शिक्षक योजक भूमिका का निर्वाह कर सकता है। किसी भी अवसर, त्योहार के बहाने गाँव का सामूहिक भोज, सामूहिक श्रमदान, ग्राम स्वच्छता, तालाब खुदाई जैसे कार्यक्रम समरसता का वातावरण बनाने में सहायक होते हैं। पुरातन एवं नूतन पीढ़ी में परस्पर सद्भावना एवं सामंजस्य रखना भी अति आवश्यक है। उसके अभाव में परम्परागत न जीवन के स्थायी मूल्यों को कायम रखना संभव नहीं हो पाएगा तथा ग्राम विकास का मामला गड़बड़ा सकता है। योग्य शिक्षक दोनों पीढ़ियों को साधने का काम सहज भाव से कर सकता है। ग्राम आधारित विकास मॉडल ही भारत के भाग्योदय का माध्यम बन सकता है। विश्व में शान्ति प्रेम, सौहार्द, अपनत्व के विस्तार के लिए परम्परागत भारतीय गाँवों का उत्थान अति आवश्यक है। लगभग 6 लाख गाँवों और 70 प्रतिशत आबादी के विकास को गौण करके हम भारत को विकसित राष्ट्र नहीं बना सकते। अतः ग्राम विकास वर्तमान समय की आवश्यकता एवं अनिवार्यता है। सौभाग्य से इस पूरे कार्य का केन्द्र बिन्दु शिक्षक हो सकता है।

'शिक्षक कभी साधारण नहीं होता', ऐसा आचार्य चाणक्य कहते थे। शिक्षक अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति एवं इच्छा शक्ति के सहारे ग्राम विकास के स्वप्न को साकार कर सकता है। गाँव को परिवार समझ कर उसका उत्थान करने की प्रेरणा शिक्षक ही दे सकता है। ग्राम विकास के लिए सबका मन बनाने के बाद अगला कदम इस पूरे अभियान के लिए धैर्यवान, समर्पित भाव से कार्य करने वाली टोली [टीम] का गठन करना है। शिक्षक अपने पुराने विद्यार्थियों का चयन कर बड़े-बुजुर्गों के मार्गदर्शन में काम करने वाली टीम का गठन कर सकता है।

वास्तव में ग्राम विकास के विषय में। शिक्षक की भूमिका योजक की है। यदि वह संकल्पवान, धैर्यवान एवं कुशल योजनाकार है, तो ग्राम विकास होकर ही रहता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक इस हेतु मन बनाएँ, यह विषय उसके मन में उतरे। बाकी सारे काम तो उसके उज्ज्वल व्यक्तित्व के सहारे स्वतंत्र होते चले जाएँगे। ग्राम विकास के साथ राष्ट्र उत्थान के यज्ञ में यह उसकी महत्त्वपूर्ण आहूति होगी। ❑

ग्रामीण विकास और रोजगार के अवसर

डॉ. प्रशांत सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर,
रसायन विज्ञान विभाग,
डी.ए.वी. महाविद्यालय
देहरादून (उत्तराखण्ड)

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है, जिसका बड़ा भाग आज भी गाँव में निवास करता है। गाँव में अधिकाँश लोगों का जीवन-यापन आज भी कृषि पर निर्भर है। गाँव का विकास मुख्यतया प्राकृतिक, सामाजिक व आर्थिक कारकों पर निर्भर करता है। गाँव के लोग सादा जीवन व्यतीत करते हैं तथा अपने कार्य के प्रति समर्पित एवं जागरूक रहते हैं। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों की जब भी बात होती हैं, तो तपती हुई धूप में खेती करता किसान, दूर-दूर तक फैले हुए खेत-खलियान और उन पे लहलहाती हरी-भरी फसलें तथा गाँव के मेलों की चेतना स्वयं ही मन-मस्तिष्क में उभर आती हैं।

भारत में कुल आबादी का 70 प्रतिशत भाग कृषि व सहयोगी कार्यों से आजीविका प्राप्त करता है, इसके बावजूद देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान केवल 16 प्रतिशत ही है। गाँव में विकास का सीधा अभिप्राय देश की उन्नति से जोड़ा जाता है, क्योंकि वे गाँव ही हैं, जो आज भी भारत की कृषि अर्थव्यवस्था को संभाले हुए हैं। कोरोना जैसी महामारी होने के बावजूद उनकी मेहनत में कोई कमी नहीं नजर आयी और जिस वक्त देश में सब कुछ ठप पड़ा हुआ था, उस दौरान कृषि क्षेत्र में रिकॉर्ड उत्पादन हुआ और किसान अपनी मेहनत से अपनी आजीविका कमा सके। आजकल समय के साथ-साथ लोगों की धारणा बदल रही है। लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं व गाँव के लोग ग्रामीण असुविधा से तंग आकर शहरी सुविधा से आकर्षित हो रहे हैं, और शहरों में अपना निवास बनाकर सुविधा तलाश रहे है। ग्रामीण जीवन में कई सारी समस्याएँ हैं, जिनका सामना ग्रामवासियों को करना पड़ता है। ग्रामीण जीवन के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सिंचाई व्यवस्था, आवास तथा सड़कें बुनियादी आवश्यकताएँ हैं।

पहले गाँवों में यातायात के साधन बहुत कम थे। गाँव से पक्की सड़क 15-20 किलोमीटर दूर तक हुआ करती थी।

कहीं-कहीं रेल पकड़ने के लिए ग्रामीणों को 50-60 किलोमीटर तक पैदल जाना पड़ता था। अब धीरे-धीरे यातायात के साधनों का विकास किया जा रहा है। फिर भी ग्राम-सुधार की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। अभी भी अधिकाँश भारतीय किसान निरक्षर हैं। भारतीय गाँवों में उद्योग धंधों का विकास अधिक नहीं हो सका है। ग्राम पंचायतों और न्याय-पंचायतों को धीरे-धीरे अधिक अधिकार प्रदान किये जा रहे हैं। इसलिए यह सोचना भूल होगी कि जो कुछ किया जा चुका है, वह बहुत है। वास्तव में इस दिशा में जितना कुछ किया जाये, कम है। यदि इस बात को ध्यान में रखते हुए ग्रामीणों के लिए योजनाएँ बनाई जाएँ, तो यह एक सफलतम कदम होगा।

आज भी भारत के लगभग 65 प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं, और गाँव में रोजगार पैदा करना सदैव एक विशेष चुनौती रही हैं। स्थानीय रोजगार आज के समय की माँग है, जो कि ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने अथवा पलायन जैसी समस्याओं को रोकने में कामयाब होगा। इसके साथ में कृषि क्षेत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं में अब बागवानी, पुष्प उत्पादन जैसे कृषि कार्य जुड़ने से युवाओं एवं महिलाओं को रोजगार के नए अवसर मिल रहे हैं, साथ ही साथ सरकार भी इसमें अपना सहयोग अलग अलग योजनाओं के माध्यम से प्रदान करवा रही हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अति महत्त्वपूर्ण सरकारी योजनाएँ व प्रयासों पर विशेष चर्चा की आवश्यकता है, जो कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए वरदान स्वरूपी योजनाएँ साबित हुई हैं। इन्हीं में विश्व की सबसे बड़ी रोजगार गारंटी योजना, महात्मा गाँधी रोजगार गारंटी योजना 'मनरेगा', जिसकी शुरुआत 2006 में हुई। इस योजना का उद्देश्य ही गाँवों में बसने वाले लोगों को रोजगार प्रदान करना व उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2010-11 में इस योजना से 5.49 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला, अब तक इससे लगभग 1200 करोड़ रोजगार दिवस का कार्य हो चुका है।

ऐसे ही 1999 में शुरू हुआ राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, स्वरोजगार के उद्देश्यों पर केंद्रित है एवं गरीब युवाओं को कौशल विकास का प्रशिक्षण देता है, जिससे उन्हें रोजगार प्राप्ति के अवसर मिल सकें। इसी तरह ग्रामीण विकास रोजगार योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, प्रधानमंत्री स्वरोजगार योजना जैसी योजनाएँ ग्रामीण विकास और ग्रामीण लोगों व युवाओं को रोजगार प्रदान करवाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम हैं। इन सभी योजनाओं के फलस्वरूप देश की बढ़ती आबादी के अनुरूप नौकरियों और व्यवसायों की व्यवस्था करने में मदद मिली है। साथ ही विभिन्न योजनाओं के तहत गाँवों में बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा सस्ती दरों पर ऋण देने के प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि लोग इस वित्तीय मदद से अपनी क्षमता और हुनर के अनुरूप काम-धंधे चलाकर परिवार का भरण-पोषण कर सकें और गाँवों के विकास में योगदान दे सकें।

स्थानीय रोजगार आज के समय की माँग हैं, जो कि ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने अथवा पलायन जैसी समस्याओं को रोकने में कामयाब होगा। इसके साथ में कृषि क्षेत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं में अब बागवानी, पुष्प उत्पादन जैसे कृषि कार्य जुड़ने से युवाओं एवं महिलाओं को रोजगार के नए अवसर मिल रहे हैं, साथ ही साथ सरकार भी इसमें अपना सहयोग अलग अलग योजनाओं के माध्यम से प्रदान करवा रही हैं।

गाँवों की उन्नति और कृषक विकास के लिए सरकार को चाहिए कि इन समस्याओं का शीघ्र समाधान किया जाए। प्रत्येक ग्राम में शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, मनोरंजन और आवागमन की सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाए। कृषि की उन्नति और उत्पादन में वृद्धि के लिए कृषि सम्बन्धी आधुनिकतम उपकरणों से किसान को परिचित कराया जाए, सिंचाई के साधनों का विस्तार किया जाए, अच्छी खाद, उन्नत बीज तथा यन्त्रों की प्राप्ति के लिए किसान को ब्याज की सस्ती दरों पर ऋण प्राप्त कराया जाए, गाँवों में कुटीर उद्योगों का विकास किया जाये और लघु उद्योगों की स्थापना की जाए, तो निश्चित ही ग्रामीणों का जीवनस्तर ऊँचा उठेगा ग्रामों का विकास होगा।

अत: रोजगार एवं ग्रामीण इलाकों का विकास एक महत्त्वपूर्ण कार्य के तौर पर देखा जाना चाहिए। सरकारों को चाहिए कि वे गाँव में रोजगार के अनेक मौके सृजित करें तथा लोगों को जागरूक करें जिससे हमारे गाँव और युवा दोनों ही समग्र विकास की ओर तेजी से आगे बढ़ पाएँ, जिससे कि हम सब भी बेहतरी की ओर बढ़ सकें व देश उन्नति के मार्ग पर और तेजी से बढ़ पाए। ❑

कृषि विधेयक : कृषि व ग्राम विकास का आधार

चन्द्रवीरसिंह भाटी

सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान, राजकीय
स्नातकोतर महाविद्यालय
ओसियां, जोधपुर

कृषि भारतीय समाज व अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रही है। आज भी 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 18 प्रतिशत है। राष्ट्र को अपने खून पसीने से सींचने वाले किसान वर्ग का अगर जीवन स्तर सुधारना है तो समाज के निम्नतम वर्ग को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए और यदि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तीव्रता प्रदान करनी है तो कृषि क्षेत्र में सुधार अत्यन्त आवश्यक है।

कृषि सुधारों के लिए कई दशकों से कार्य योजना चल रही थी। अटल बिहारी वाजपेयी के समय सन् 2000 में शंकरलाल गुरु कमेटी ने कई सुधारों की सिफारिश की। 2003 में मॉडल Agriculture Produce Marketing Committee (APMC) एक्ट व 2007 में APMC रूल्स बने। 2010 में कृषि सुधारों के सम्बन्ध में पंजाब, हरियाणा, पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्रियों की समिति व 2013 में दस राज्यों के कृषि मंत्रियों की संस्तुति मिली। 2017 में केन्द्र सरकार ने राज्यों को APMC एक्ट में संशोधन करने और मॉडल Agriculture Produce and Live stock Marketing (Promotion and Facilitation) Act 2017 अपनाने को कहा। APML एक्ट का उद्देश्य राज्यस्तर पर कृषि सम्बन्धी 9 प्रमुख क्षेत्रों में सुधार कर एक एकीकृत कृषि बाजार विकसित करना था। 2020 में पारित कृषि विधेयक भी कृषि सुधारों की इसी कड़ी का हिस्सा है।

सरकार द्वारा तीन प्रमुख कृषि विधेयक पारित किये गये हैं- (1) Farmers Produce Trade and Commerce (Promotion Facilitation) Act 2020 (2) The Farmer (Empowerment and Protection) Agreement of price Assurances and Farm Service Act 2020. (3) The Essential Commodity Act 2020.

Farmer Produce Trade and Commerce (Promotion and Facilitation) Act का उद्देश्य कृषकों को अपनी फसल को अधिसूचित Agriculture Produce Marketing Committee (APMC) अर्थात् सरकारी नियमन के अन्तर्गत आने वाली मंडियों से बाहर बेचने की सुविधा प्रदान करना है। कृषक अब अपनी फसलों को राज्य के भीतर या सम्पूर्ण भारत के किसी भी राज्य में बेच सकेंगे। कृषि उपजों के लिए अब इलेक्ट्रानिक व्यापार (ई-व्यापार) की सुविधा भी प्रदान की गयी है। इस सन्दर्भ में मुख्य आलोचना यह है कि APMC से परे खरीद-बेचान की दूर एक तरह से न्यूनतम समर्थन मूल्य की समाप्ति की अर्थात् MSP की समाप्ति है।

The Farmer (Empowerment & Protection) Agreement of Price Assurances and Farm services - विधेयक संविदा खेती (Contract Farming) तथा फसलों के बेचान और खरीद से सम्बन्धित समझौतों के संदर्भ में

विभिन्न प्रावधान करता है। इस विधेयक के अनुसार कृषक खेती के लिए अपनी भूमि संविदा पर देता है तो एक लिखित समझौता होगा जिसमें फसल के उपरांत दी जाने वाली राशि का उल्लेख होगा। लिखित समझौते में राशि के अतिरिक्त फसल की गुणवत्ता, विभिन्न मापदंडों व फसल सप्लाई से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का भी उल्लेख होगा। जहाँ किसी कारणवश फसल खरीद राशि का उल्लेख करना संभव नहीं है वहाँ एक न्यूनतम गारंटीड राशि का उल्लेख आवश्यक रूप से करना होगा तथा बोनस, प्रिमियम राशि यदि नियमानुसार देय है तो उसका भी उल्लेख करना होगा। मूल्य निर्धारण विधि का भी उल्लेख आवश्यक रूप से समझौते के साथ एनेक्सचर में होगा। संविदा की न्यूनतम अवधि एक फसल लेने (I crop seasonal) तक जबकि अधिकतम अवधि 5 वर्ष होगी। 5 वर्ष की अवधि को बढ़ाया जा सकेगा यदि किसी फसल का उत्पादन 5 वर्ष बाद भी जारी रहता है। विवाद निस्तारण का त्रिस्तरीय ढाँचा होगा। प्रथमतः Conciliations Board फिर SDM कोर्ट और फिर अपीलीएट अथॉरिटी के पास सुनवाई का प्रावधान होगा। इस संदर्भ में मुख्य आलोचना यह है कि कृषक का शोषण बड़े निजी व्यवसाइयों, जो खेती संविदा पर करेंगे, के द्वारा किया जायेगा। कृषक के पास इतना ज्ञान, धन और विधिक क्षमता नहीं है कि वह संविदा व्यवसाइयों को मुकाबला प्रशासन या अदालतों के सामने कर सके।

Essential Commodity (Amendment) Act 2020 के अनुसार केन्द्र सरकार युद्ध, अकाल, प्राकृतिक आपदा, अत्यधिक मूल्य वृद्धि के समय कृषि उत्पादों के भण्डारण, परिवहन वितरण का नियमन का विशेष अधिकार रख सकेगी। सरकार बागवानी सम्बन्धी फसलों के रिटेल (खुदरा) मूल्य में 100 प्रतिशत वृद्धि होने तथा Non Perishable (गैर नाशवान) कृषि उत्पादों के रिटेल (खुदरा) मूल्य में 50 प्रतिशत वृद्धि होने पर भंडारण (Stock Limit) सम्बन्धी विशेष सीमाएँ तय करेगी। मूल्य वृद्धि का मापन विगत 12 महीने के मूल्यों के आकलन और विगत 5 वर्षों के खुदरा मूल्य के औसत जो भी निम्नतम होगा के आधार पर किया जायेगा। दालों तिलहन, खाद्य तेल व कई अनाजों को Essential Commodity के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया गया है। इस विधेयक की प्रमुख आलोचना यह है कि इससे कालाबाजारी और अवैध भंडारण को प्रश्रय मिलेगा। प्याज, दाल, तेल आदि व्यक्ति के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं का हिस्सा है और इसे अतिआवश्यक श्रेणी की वस्तुओं से बाहर करना सही नहीं है। तीनों विधेयक कृषि सुधारों को आगे बढ़ाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है। इससे कृषक को अपनी सुविधा अनुसार फसल बेचने और वाजिब मूल्य मिलने में सुविधा प्राप्त होगी। संविदा कृषि से किसानों को नवीनतम कृषि पद्धतियों और मार्केटिंग तरीकों की जानकारी मिलेगी। कृषि विधेयक के विरोध के अधिकांश आधार राजनीति से प्रेरित हैं। किसानों के समक्ष गलत तथ्य व तर्क रखकर उनको भ्रमित किया जा रहा है। यह भ्रमित करने का कार्य भी उन्हीं लोगों द्वारा किया जा रहा है जिन्होंने विगत वर्षों में विद्यार्थियों, दलितों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों को भ्रमित कर राष्ट्र में वैमनस्य और अराजकता फैलाने का प्रयत्न किया।

कृषि भारतीय समाज व अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रही है। आज भी 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 18 प्रतिशत है। राष्ट्र को अपने खून पसीने से सींचने वाले किसान वर्ग का अगर जीवन स्तर सुधारना है, समाज के निम्नतम वर्ग को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करती है और यदि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तीव्रता प्रदान करती है तो कृषि क्षेत्र में सुधार अत्यन्त आवश्यक है।

किसानों को इस आधार पर भड़काया जा रहा है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य समाप्त हो जायेगा और उनकी जमीन पर संविदा करने वाले व्यापारी कब्जा कर लेंगे। न्यूनतम समर्थन मूल्य के संदर्भ में सरकार का मत यह है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य पहले भी कानून का हिस्सा नहीं था और नये कानून में भी इस संदर्भ में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। सरकार के अनुसार मंडिया चालू रहेंगी। APMC को और मजबूत किया जायेगा तथा MSP जारी रखने के बारे में सरकार लिखित आश्वासन देने को तैयार है।

किसानों की जमीन पर कब्जा नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह कानून किसानों की भूमि के किसी भी तरह के ट्रांसफर, बिक्री, लीज या गिरवी रखने की अनुमति नहीं देता। कॉन्ट्रेक्टर किसान की जमीन पर किसी प्रकार का स्थायी बदलाव नहीं कर सकते। राज्यों को कृषि समझौते पंजीकृत करने का अधिकार दिया गया है। APMC के बाहर निजी बाजार/मंडी पर राज्य कर लगा सकते हैं। कॉन्ट्रेक्टर को समय सीमा के भीतर कृषक को भुगतान करना होगा अन्यथा जुर्माना लगेगा। कृषक किसी भी समय बगैर किसी जुर्माने के नियमानुसार कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग समाप्त कर सकता है। अर्थात् कॉन्ट्रेक्टर और व्यापारियों पर अंकुश लगाने के प्रावधान पर्याप्त रूप से कृषि सम्बन्धी विधेयकों में किये गये है। सारतः यह विधेयक कृषि, कृषक, ग्राम, अर्थव्यवस्था और फलतः राष्ट्र विकास की दिशा में प्रभावी कदम है। ❑

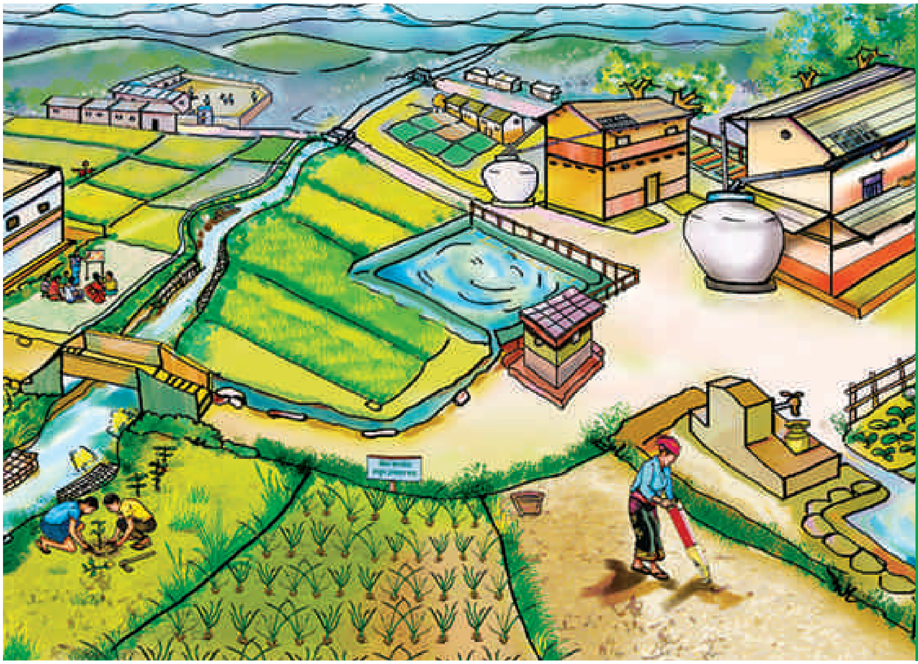

ग्रामीण विकास : आत्मनिर्भर भारत का आधार

डॉ. सुमन बाला

व्याख्याता
हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूण्डी, अजमेर (राज.)

हमारे देश की अधिकांश आबादी गाँवों में रहती है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के शब्दों में कहें तो 'भारत गाँवों का देश है और इसकी आत्मा गाँवों में निवास करती है।' आज भी गाँव और ग्रामीण शब्द से अधिकांश लोगों के मस्तिष्क में उभरने वाली छवि सुखद नहीं कही जा सकती। 'गाँव का गँवार' तो शब्द मुहावरे के रूप में प्रचलन में आ गया है। लोग गाँव को गंदगी, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और ऐसे ही कई रूपों में देखते हैं और यह छवि बनने के पीछे वास्तविकता भी है। आज भी गाँवों में शहरों की तुलना में सुविधाओं का अत्यन्त अभाव दिखाई देता है। यदि हम कोरोना काल में शिक्षा को ही लें, तो शहरों के बालक-बालिकाएँ जहाँ ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा से जुड़े हुए हैं, वहीं अधिकांश ग्रामीण बच्चे इससे वंचित हैं। एक ओर जहाँ गरीबी और कम आमदनी के कारण इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का अभाव है, तो दूसरी ओर नेटवर्क कमजोर अथवा न होना भी एक बड़ी समस्या है। आज भी स्थिति कमोबेश वैसी ही है जैसा कि महात्मा गाँधी ने 1939 में वृंदावन में ग्राम सेवकों द्वारा आयोजित एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था-

''यह देखकर मुझे बहुत दु:ख होता है कि आप लोगों में से अधिकांश या तो शहर से आए हैं या शहरी जीवन के अभ्यस्त हैं। जब तक आप अपना मन शहर से हटाकर गाँवों में नहीं लगाएँगे, तब तक गाँव के लोगों की सेवा आप नहीं कर सकते। आपको यह समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तान गाँवों से बना है, शहरों से नहीं और जब तक आप ग्राम्य जीवन को और गाँवों के कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित नहीं कर सकते, तब तक आप उनका पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। हमारे गाँवों में जीवन का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है और ये मृतप्राय हैं। औद्योगीकरण उनमें प्राणों का संचार नहीं कर सकता है। अपनी झोंपड़ी में रहने वाले किसान को जीवन तभी मिलेगा जब उसे अपने घरेलू उद्योग फिर से वापस मिलेंगे। जब अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह गाँवों पर ही निर्भर रहेगा, शहरों पर नहीं, जैसा कि आज उसे विवश होकर रहना पड़ रहा है। इस आधारभूत सिद्धान्त को यदि आप आत्मसात नहीं करते तो ग्राम पुनर्निर्माण के उस कार्य में लगने वाला सारा समय व्यर्थ जायेगा।'' गाँधी जी के ये शब्द आज लगभग 80 वर्षों के पश्चात भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने ये उस काल में रहे। अपितु आज जब हमारा देश 'आत्मनिर्भर भारत' और 'विकसित भारत' बनने की कोशिशों में लगा है तो यह और अधिक आवश्यक हो जाता है कि सर्वप्रथम 'आत्मनिर्भर ग्राम' विकसित होंगे तभी 'आत्मनिर्भर भारत' विकसित हो सकेगा।

प्राकृतिक रूप से भी प्रत्येक प्राणी (चाहे वह पशु, पक्षी अथवा मनुष्य हो) की प्रवृत्ति अपनी संतान को आत्मनिर्भर बनाने की ही होती है। जहाँ पक्षी अपने नवजातों को भोजन-प्रबंध करना, उड़ान भरना जैसे कार्यों द्वारा स्वतन्त्र बनना सिखाते हैं, वहीं मनुष्य भी अपनी संतान के जन्म से लेकर उसके आजीविका अर्जित करने तक उसे आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रयासरत रहता है। परिवारों, समुदायों, समाजों और राष्ट्रों में इसी चलन का अनुगमन किया जाता है। किसी देश के आत्मनिर्भर होने के लिए पर्याप्त उत्पादन के आत्मनिर्भर पारिस्थितिकी तन्त्र का विकास आवश्यक है, जिसमें सभी

नागरिकों (चाहे वह ग्रामीण हों अथवा शहरी) के लिए रोजगार और विकास के अवसर उपलब्ध हों। गाँधी जी के हिंद स्वराज में उन्होंने कहा है कि ''कोई व्यक्ति, कोई गाँव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतन्त्र हो सकता है।'' सिंधु घाटी की सभ्यता के समय से ही भारत में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था और समाज रहा है। उस समय चाहे कृषि हो या गैर-कृषि पद्धतियाँ, सभी उत्पादन की परम्परागत पद्धतियों पर आधारित और आत्मनिर्भर थी। उस समय के गाँव विकसित और आत्मनिर्भर थे। यहाँ तक कि मुगल-काल के आरम्भ तक गाँव एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में स्थापित थे। कालान्तर में राजाओं, राजनीतिज्ञों एवं शासकों ने भारत के गाँवों का अपनी इच्छा एवं स्वार्थ से दोहन किया और यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं राजव्यवस्था को अपने ढँग से तोड़ा-मरोड़ा, जिसके फलस्वरूप गाँव आर्थिक रूप से कमजोर होते गये और विकास की गति से पिछड़ते चले गये। स्वाधीनता से पूर्व भी कुछ शासकों, जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य और सम्राट अशोक ने ग्रामीण विकास हेतु कार्य किये, जिसमें जलाशयों, सड़कों (मार्गों), सरायों और अन्य सामाजिक सुविधाओं के निर्माण के साथ शिक्षा-विकास में प्रचार-प्रसार का उल्लेख मिलता है। आजादी के पश्चात निरन्तर ग्रामीण विकास हेतु योजनाएँ बनीं जिसमें जमीदारी प्रथा का उन्मूलन कर पंचायती राज व्यवस्था को पुन: स्थापित करना एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास हेतु विद्युत, जल, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा ग्रामीण लघूद्योगों पर भी बल दिया गया। इसके बाद के ग्रामीण विकास चरण के तहत कृषि, कृषक कार्यक्रमों के साथ रोजगार को भी सम्मिलित किया गया। इसके पश्चात एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम जैसी योजनाएँ भी बनीं, परन्तु ग्रामीण जीवन में विशेष परिवर्तन देखने में नहीं आया। गाँव, जहाँ भारत की अधिक संख्या में जनसंख्या निवास करती है और अधिक श्रम शक्ति उपलब्ध है, मूलभूत आवश्यकताओं की कमी से जूझते आ रहे हैं। ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक घटकों पर चिन्तन कर तदनुसार बदलाव लाना आज की आवश्यकता और 'आत्मनिर्भर भारत' के लिए अनिवार्यता हो जाता है।

ग्रामीण विकास से हमारा तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे निर्धन लोगों के जीवन में सुधार कर उन्हें आर्थिक विकास की धारा में सम्मिलित करना है, जिसके लिए इनकी मूल जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ उन्हें पर्याप्त मात्रा में सुविधाएँ उपलब्ध करवाना और आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक है। यदि हम ग्रामीण विकास को गति नहीं दे पाए तो शहरीकरण की समस्याओं को और अधिक बढ़ने से भी रोक नहीं पाएँगे। ग्रामीण विकास के अभाव में एक मुख्य समस्या गाँवों से लोगों के पलायन के रूप में पिछले दशकों से सामने आ रही है। पिछले दशक में 2011 की जनगणना के अनुसार गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने वालों की संख्या 15.6 प्रतिशत रही है और 2021 की जनगणना में यह आँकड़ा और बढ़ने की संभावना है। इसलिए ग्रामीण भारत में किया गया विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। ग्रामीण विकास देश की सतत आर्थिक वृद्धि और मानव विकास का मूलमंत्र है। जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गति आती है तो गरीबी का उन्मूलन होता है और कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की आजीविका के अवसर प्राप्त होते हैं। विश्व में 'आत्मनिर्भर भारत, विकसित भारत और विश्वगुरु भारत' का उद्‌भव ग्रामीण विकास से ही संभव है। ग्रामीण गरीबी और विकास की चुनौती से निपटने की क्षमता पर ही देश का विकास और आत्मनिर्भरता का उद्देश्य निर्भर करता है क्योंकि ग्रामीण विकास ही शहरी विकास का आधार बनता है। देश की इस ग्रामीण आबादी पर ही पूरे देश का पालन-पोषण करने, पारिस्थितिकीय संतुलन करने और सामाजिक सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने की जिम्मेदारी है। अत: जिन गाँवों पर इतना महत्त्वपूर्ण दायित्व है, उनका विकास सर्वप्रथम होना बेहद आवश्यक है। इस क्रम में भारत सरकार ने किसानों की आय 2022 तक दोगुनी करने के सार्थक प्रयास आरम्भ किए हैं, जो कि एक सराहनीय पहल कही जा सकती है। विश्व में भारत का दूध-उत्पादन में प्रथम स्थान है और देश खेती और खाद्य उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर है जो एक अच्छी बात है परन्तु किसान की कम आमदनी, क्षीण लाभ और जोखिमपूर्ण आजीविका-संघर्ष उसके विकास में बाधक बना हुआ है। किसान के गुणवत्तापूर्ण एवं सम्मानजनक जीवन के

लिए ग्रामीण विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। महात्मा गाँधी ने भी अपनी 'हिन्द स्वराज' पुस्तक में ऐसे महान भारत की कल्पना की थी जिसमें आत्मनिर्भर गाँव को राष्ट्रीय ढाँचे की इकाई माना गया था और उनके अनुसार गाँव की स्थिति राष्ट्र की स्थिति को प्रतिबिम्बित करती है। गाँव आत्मनिर्भर होंगे तो देश भी आत्मनिर्भर होगा। गाँधी जी के ग्रामीण विकास के दर्शन में ग्राम स्वावलम्बन मुख्य आधार माना गया था। उन्होंने अपनी ग्राम्य विकास की व्यूहरचना में आदर्श ग्राम की कल्पना कर उसे मूर्त रूप देने के प्रयत्न भी किए। उनके अनुसार ''आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह का होना चाहिए कि उसकी स्वच्छता की आसानी से पूरी-पूरी व्यवस्था रहे। उसकी झोंपड़ियों एवं मकानों में पर्याप्त हवा एवं प्रकाश का प्रबन्ध होना चाहिए और उनके निर्माण में जिस सामान का उपयोग होगा, वह ऐसा होगा जो गाँव के आस-पास पाँच मील की त्रिज्या के अन्दर आने वाले क्षेत्र में मिल सके। इन झोंपड़ियों में आंगन या खुली जगह होगी, जहाँ उस पर घर के लोग अपने उपयोग के लिए साग-भाजियाँ उगा सकेंगे और मवेशियों को रख सकेंगे। गाँव की गलियाँ एवं सड़कें जिस धूल में समाहित हैं, उससे वे मुक्त होंगी।

उस गाँव में आवश्यकतानुसार कुएँ होंगे और वे सबके लिए खुले होंगे। इसमें सब लोगों के लिए पूजा के स्थान होंगे, सबके लिए सभा- भवन होगा, मवेशियों के चरने के लिए चरागाह होंगे, सहकारी डेयरी होगी, प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशालाएँ होंगी, जिसमें मुख्यत: औद्योगिक शिक्षा दी जाएगी एवं झगड़ों के निपटारे के लिए ग्राम पंचायत होगी। गाँवों की गलियाँ स्वच्छ हो। हर गली में पानी के निकास का उत्तम प्रबन्ध हो। उन्हें कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका संबंधी पूरा अधिकार होगा। जाति प्रथा का नामोनिशान भी नहीं होगा एवं गाँव की सुरक्षा हेतु एक ग्रामीण सुरक्षा बल होगा।'' वे प्रत्येक गाँव को आत्मनिर्भर गणराज्य बनाना चाहते थे। वर्तमान में भी हमें ग्रामीण विकास एवं 'आत्मनिर्भर ग्राम' हेतु मूलत: चार प्रमुख घटकों पर विचार करना होगा। प्रथम कृषि विकास हेतु खेती में नवाचार जिसमें फसलों का बेहतर रूप, बेहतर खाद, बीज, बुआई, कटाई भण्डारण के आधुनिक तरीकों के साथ विपणन की सही एवं उचित व्यवस्था की आवश्यकता है। किसान अपने व्यवसाय के प्रति जागरूक और सक्षम बनें यह अति आवश्यक, जिससे वह किसान केन्द्रित सेवाओं और योजनाओं का पूरा उपयोग करने के साथ-साथ अपनी खेती को 'उत्पादन केन्द्रित' की बजाय 'आमदनी केन्द्रित' भी बना सकें। ग्रामीण विकास का दूसरा अहम घटक ग्रामीण उद्योग विशेषतया लघु उद्योग है। ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों का विकास, उद्योगों के लिए आधुनिक तकनीक और ग्रामीणों की तकनीकी प्रशिक्षण की उपलब्धता के साथ उनके निर्मित सामान का समय पर सही विपणन भी हो, इस पर ध्यान देना आवश्यक है। ग्रामीण विकास के लिए तीसरा महत्त्वपूर्ण घटक 'शिक्षा' है। प्रत्येक गाँव में शिक्षा का प्रसार, शिक्षा की सुलभता, तकनीकी शिक्षा, हस्तशिल्प क्षमता में वृद्धि, कृषि विज्ञान आदि महत्त्वपूर्ण पक्षों का समावेश क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए जो गाँव को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक है। ग्रामीण विकास का चौथा घटक आवश्यक सेवाओं का विकास है जिसमें सिंचाई, स्वास्थ्य, परिवार-कल्याण, विद्युतीकरण, पेयजल, स्वच्छता, संचार, बैंकिंग, आवास, सड़क आदि की दृष्टि से गाँवों को आत्मनिर्भर बना सके। इन चार घटकों के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जरूरी बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता है। गाँवों का बुनियादी ढाँचा मजबूत होगा, तभी हम गाँव और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की गति को तीव्र करके सतत बनाये रख सकते हैं। ग्रामीण भारत का बुनियादी ढाँचा इतना मजबूत हो कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दूसरे देश की अर्थव्यवस्था में भागीदारी निरंतर बढ़ती रहे। गाँवों में जब सिंचाई की उचित व्यवस्था विकसित कर दी जाएगी तो किसान की मानसून पर निर्भरता कम हो जाएगी, गाँवों में सड़कों का जाल होगा तो किसानों को बिना समय नष्ट किये अपनी पैदावार को मंडियों, बाजारों तक पहुँचाने में सहूलियत हो जाएगी। बिजली, स्वास्थ्य, संचार, आवास, शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता होगी तो ग्रामीण स्वस्थ, स्वच्छ एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन जी सकेंगे। ग्रामीण विकास द्वारा ही ग्रामीण भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास में संतुलन बना रह सकता है। अत: आत्मनिर्भर भारत के लिए आत्मनिर्भर ग्राम और आत्मनिर्भर ग्राम के लिए ग्रामीण विकास अनिवार्य हैं। ❑

ग्रामीण विकास से हमारा तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे निर्धन लोगों के जीवन में सुधार कर उन्हें आर्थिक विकास की धारा में सम्मिलित करना है जिसके लिए इनकी मूल जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ उन्हें पर्याप्त मात्रा में सुविधाएँ उपलब्ध करवाना और आत्मनिर्भर बनाना है। यदि हम ग्रामीण विकास को गति नहीं दे पाए तो शहरीकरण की समस्याओं को और अधिक बढ़ने से भी रोक नहीं पाएँगे। ग्रामीण विकास के अभाव में एक मुख्य समस्या गाँवों से लोगों के पलायन के रूप में पिछले दशकों से सामने आ रही है। पिछले दशक में 2011 की जनगणना के अनुसा गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने वालों की संख्या 15.6 प्रतिशत रही है और 2021 की जनगणना में यह आँकड़ा और बढ़ने की संभावना है। इसलिए ग्रामीण भारत में किया गया विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा।

ग्रामीण विकास और महिलाएँ

श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी

सहायक आचार्य
(राजनीति विज्ञान) राजकीय
बांगड़ महाविद्यालय
पाली (राजस्थान)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की धुरी भारतीय गाँवों को कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वर्तमान शहरीकरण में गाँव शब्द कहीं हाशिये पर डाल दिया गया है, लेकिन 135 करोड़ की आबादी और कृषि प्रधान हमारा देश आज भी गाँवों पर बहुत हद तक निर्भर है।

आजादी के बाद भारत में ग्रामीण विकास के लिए अनेक योजनाएँ और सैंकड़ों कार्यक्रम प्रारंभ किये गए लेकिन सही मायने में देखा जाए तो आज भी गाँवों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार बदस्तूर जारी है। भारत में 1959 में ग्रामीण क्षेत्र को मुख्यधारा में लाने के लिए पंचायती राज व्यवस्था की नींव पड़ी। लेकिन वास्तविकता में देखा जाए तो इसमें भी पुरुषों का ही वर्चस्व रहा। मुखिया पंच, सरपंच, पंचायत सभी पुरुषों के एकाधिकार का प्रतीक बन गये।

प्राचीन काल से ही भारतीय स्त्रियों का लोहा पूरा विश्व मानता था। गार्गी, मैत्रेयी नाम किसी परिचय के मोहताज नहीं है। परन्तु लंबे समय तक विदेशी शासन के रहने के कारण जो भारतीय संस्कृति की मूल भावना थी 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' वह धीरे-धीरे विलुप्त होती गई। विदेशी शासन प्रणाली से प्रभावित होकर भारतीय पुरुषवादी सोच भी सामने आई एवं महिलाओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार होने लगा।

कहा जाता है कि समय की धारा अविरल बहती रहती है। सदियों से पुरुष प्रधान रहे देश में बदलाव की एक बयार आई। ये सुनहरा बदलाव था, हमारे देश में इंदिरा गाँधी प्रधानमंत्री के तौर पर भारतीय राजनीति में प्रकट हुई। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय महिलाएँ को, जो कि पूर्व में स्वयं सशक्त थी, एक अघोषित संघर्ष करना पड़ा। समाज पुरुषवादी मानसिकता का गुलाम हो गया था। राष्ट्रीय स्तर पर तो देशवासियों ने महिला शक्ति के रूप में प्रधानमंत्री के हौसले और कार्यशैली को देखा परखा और सराहा। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी निरक्षरता का बोलबाला था, जिसने दकियानूसी अवधारणा को जन्म दिया।

भारतीय समाज परिवार पर केंद्रित है तथा घर की स्त्री, माता, पुत्री, पत्नी प्रारंभ से ही अन्नपूर्णा के रूप में एक व्यवस्था से घर का संचालन करती रही है। यह एक स्वाभाविक गुण है जो प्रत्येक नारी में जन्मजात होता है। वे जन्म से ही कुशल संचालक होती है।

पंचायतीराज व्यवस्था के चलते पहले इक्का दुक्का महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में आगे आई, वार्डपंच बनी और कहीं उनको सरपंच बनने का मौका मिला। जब नारी शक्ति ने पंचायत स्तर पर नेतृत्व संभाला तो अपने अंतर्निहित गुणों के कारण वो कुशल संचालक साबित हुई। ग्रामीण विकास में अभिनव पहल हुई। महिलाओं को घूंघट की बेड़ियों से बाहर निकलकर नेतृत्व प्रदान करने का अवसर मिला जिसे उन्होंने हाथों हाथ लिया।

ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण रही है। हमेशा नींव की ईंट के समान वो आधार प्रदान करती रही। जब-जब नारी को आगे बढ़कर नेतृत्व करने का मौका मिला तो उसने अपनी कार्य कुशलता का परिचय दिया। ग्रामीण विकास के अनेक क्षेत्रों में महिलाओं ने अपना योगदान दिया। स्वयं सहायता समूह में नारियों ने न सिर्फ आर्थिक लाभ प्राप्त किया बल्कि यह समूह, एक संगठन के रूप में भी सफल सिद्ध हुआ।

ग्रामीण जीवन कृषि और पशुपालन के इर्द-गिर्द घूमता है। कृषि के क्षेत्र में महिलाएँ प्रारंभ से ही सक्रिय हैं। फसल बोने से लेकर मंडी तक पहुँचने के सफर में महिलाओं के योगदान को नकारा नहीं जा सकता, पशुपालन के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान अग्रणी रहा है। मवेशियों की सेवा करने से लेकर डेयरी तक दूध पहुँचाने के इस कार्य ने ग्रामीण क्षेत्रों में डेयरी को अर्थ उपार्जन का माध्यम बना दिया। ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योग का भी विशिष्ट स्थान है। वर्तमान शहरीकरण की आँधी में ग्रामीण क्षेत्रों से भारी मात्रा में पलायन हुआ है। इस पलायन के फलस्वरूप ग्रामीण युवा सर्वाधिक मात्रा में शहरो आए। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बुजुर्ग और महिलाएँ रह गईं। ऐसे में इन महिलाओं ने कुटीर उद्योग को पुनर्जीवित कर दिया। सीमित संसाधनों से टेराकोटा, दरी उद्योग, जरी-गोटा निर्माण एवं कसीदाकारी जैसे कुटीर उद्योग पनप रहे हैं।

महिलाओं के योगदान के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना भी असंभव है। ग्रामीण विकास की अवधारणा में विकास की धुरी महिलाएँ हैं। सरकार की अनेक कल्याणकारी योजनाएँ महिलाओं को दृष्टिगत रखते हुए बनती हैं। इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महिलाएँ सम्पूर्ण ग्राम के विकास का माध्यम बनती है। वर्तमान सरकार द्वारा स्वच्छ भारत मिशन चलाया जा रहा है जिसमें शौचालय निर्माण एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। महिलाओं को अपमानित न होना पड़े एवं प्रत्येक घर में शौचालय बने यह परिकल्पना पूरी तरह से महिलाओं पर केंद्रित है। यहाँ लक्ष्य ग्रामीण विकास है और लक्ष्य प्राप्ति का माध्यम महिलाएँ हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के कारण आये बदलाव की आहट को सिनेजगत में भी स्थान मिला है। टॉयलेट एक प्रेमकथा जैसी फिल्म में नायिका न सिर्फ अपने स्वयं के घर में अपितु पूरे ग्राम के विकास का माध्यम बनती है। यह प्रेरणादायक कहानी वर्तमान भारत में, ग्रामीण क्षेत्र में महिला सशक्तीकरण का जीता जागता उदाहरण है।

सरकार की महत्त्वाकांक्षी उज्ज्वला योजना भी ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के उत्थान पर केंद्रित है। इसमें वे अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर रही है। यदि हम प्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका की बात करें तो यह समय एक निर्णायक बदलाव का है। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाएँ वर्तमान राजनीति में सर्वाधिक सक्रिय हैं।

महिलाओं का राजनीति की मुख्य धारा में आना दोहरा फायदेमंद है। पहला तो वे प्राचीन काल से चली आ रही घूंघट प्रथा को नेस्तनाबूद कर आगे बढ़ रही हैं दूसरी ओर वे कुशलतापूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रही है। पंच, सरपंच, प्रधान से जिला प्रमुख जैसे पदों पर आज महिलाओं का दबदबा है। ग्राम सभा के अवसर पर महिलाएँ बेबाक होकर अपना दृष्टिकोण प्रकट करती है।

ग्रामीण विकास में महिलाओं ने विगत कुछ दशकों में एक और ज्योति जलाई है। यह ज्योति निरक्षरता के अंधेरों के विरुद्ध है। एक पढ़ी लिखी महिला पूरे परिवार, पूरे समाज के लिए एक मिसाल होती है। एक साक्षर महिला निश्चित रूप से अपने परिवार अपने समाज में निरक्षरता को दूर करने के लिए पुरजोर प्रयास करती है। एक पढ़े लिखे समाज का निर्माण कर वह, सिर्फ ग्रामीण विकास नहीं बल्कि पूरे देश का विकास कर रही है।

ग्रामीण विकास में महिलाओं ने विगत कुछ दशकों में एक और ज्योति जलाई है। यह ज्योति निरक्षरता के अंधेरों के विरुद्ध है। एक पढ़ी लिखी महिला पूरे परिवार, पूरे समाज के लिए एक मिसाल होती है। एक साक्षर महिला निश्चित रूप से अपने परिवार अपने समाज में निरक्षरता को दूर करने के लिए पुरजोर प्रयास करती है।

ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं ने अनेक प्रकार से विकास में अपनी महती भूमिका निभाई है। खेलों के क्षेत्रों में भी ग्रमीण बालिकाओं ने पूरे विश्व पटल पर अपना परचम लहराया है। निश्चित रूप से ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अनुकरणीय है। कुछ मामलों में महिलाओं ने स्वयं कमान अपने हाथ में लेकर प्रत्यक्ष योगदान दिया है। अनेक ऐसे खेल जो वर्तमान चकाचौंध में कहीं खो गए थे इन बालिकाओं ने न सिर्फ उन्हें चर्चित किया बल्कि अन्य लोगों के लिए मिसाल भी बने। कुश्ती जैसी प्रतियोगिता में नाम और यश अर्जित किया तथा बॉलीवुड में उनकी बायोपिक बनी। उन बालिकाओं ने अनगिनत ग्रामीण प्रतिभाओं को प्रेरित किया तथा भारत विश्व में एक शक्ति के रूप में उभरा। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप अनेक छोटे गावों में स्पोर्ट्स अकादमी की स्थापना की गई। जिनसे न सिर्फ खेलों में प्रतिभाएँ तैयार हुई, बल्कि स्थानीय स्तर पर रोजगार के साधन भी उपलब्ध हुए।

वर्तमान समय में तो अनेक ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जिनमें देश-विदेश में उच्च पद पर तैनात या विदेश में शिक्षित महिलाओं ने भी भारत के ग्रामीण विकास में योगदान देने के उद्देश्य से नौकरी छोड़ गाँव में सरपंच बनकर विकास को ज्यादा महत्त्व दिया है।

नायला जैसे छोटे से गाँव की महिला मोहिनी देवी ने नायला को पूरे विश्व में पहचान दिलाने का कार्य किया। बाड़मेर में रहने वाली रूमा देवी कशीदाकारी के काम में न सिर्फ स्वयं आत्मनिर्भर हुईं बल्कि वह रोजगार का एक बहुत बड़ा माध्यम बनकर उभरी। उनके साथ लगभग 30,000 से अधिक महिलाएँ आत्मनिर्भर हुईं और देश-विदेश में कशीदाकारी के काम से पूरे देश का नाम किया। निश्चित रूप से ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान अतुलनीय है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महिलाएँ ही ग्रामीण विकास की धुरी है। 21वीं शताब्दी ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महिलाओं के सशक्तीकरण की शताब्दी साबित होगी। ❑

‘स्वावलम्बी भारत का निर्माण गाँव व कृषि उत्पादों के उन्नत स्वरूप पर निर्भर है, इसलिए हमारे नई पीढ़ी को भारत के विशाल प्राथमिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र विकास की कुंजी कृषि उत्पाद, जल संरक्षण, वैकल्पिक उर्जा स्त्रोत, ग्रामीण उद्योग, मूलभूत सुविधाओं व महत्त्वपूर्ण विकास कार्यक्रमों की क्रियान्वयन में निहित है, अतः उक्त दिशाओं में कार्य करना उन्नत भारत के जागरण का शंखनाद है।

उन्नत कृषि, उन्नत राष्ट्र का आधार

डॉ. पी.एल. गुप्ता

सह-आचार्य भूगोल,
सेठ.आर.एल. सहरिया राज.
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कालाडेरा (राज.)

भारत का कृषि क्षेत्र अपने अनेक स्तरों व विविधताओं को लेकर संघर्ष के अनेक दृश्य प्रकट करता है। इस तथ्य को यदि हम इतिहास के आईने से देखें, तब भी कृषि और किसान के मुद्दे हमें संघर्ष की गाथा लिए हुए नजर आयेंगे। किसान और कृषि उद्योग का मुख्य संघर्ष अपने प्रारम्भिक काल से भूमि व कृषि व्यवस्थाओं के इर्द-गिर्द ही रहा है, जिसकी बानगी आज दिन तक भी दिखाई देती है। खैर इस स्थिति का चिंतन तो एक अलग विषय है, पर यह परम सत्य है कि उन्नत राष्ट्र की कल्पना उन्नत कृषि किसानों की खुशहाली के बिना मुमकिन नहीं है। इसलिए कृषि अर्थव्यवस्था आधारित भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का कहना है कि देश के विकास के प्रत्येक मुद्दे पर हम सबको एक दिशा एक गति, एक मति पर चलना होगा, फिर चाहे, उन्नत कृषि व खुशहाल किसानों का मामला ही क्यों न हो।

उन्नत कृषि के मायने

उन्नत कृषि के मायने में सीमित संसाधनों (भूमि, जल व बिजली आदि) से न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन लेने से है। उन्नत कृषि में छोटी व सीमांत किसानों की उत्पादकता बढाने के लिए वैज्ञानिक शैली व नई तकनीक का प्रयोग किया जाता है, जिसमें कृषिजन्य उत्पादों का अधिकतम सम्भावनाओं व किसानों की जरूरतों के साथ तालमेल बैठाया जाता है, अर्थात् उन्नत कृषि का मुख्य उद्देश्य अच्छी फसल व सहायक उत्पादों के साथ-साथ वायु, जल, भूमि व मानवीय स्वास्थ्य का संरक्षण भी है। इस प्रकार उन्नत कृषि में फसलों में उच्च उत्पादकता, बहुकृषि विकल्प फसल संरक्षण व बीमा वैज्ञानिक तकनीकी व उच्च विपणन का दृष्टिकोण शामिल है जिससे एक तरफ लागत को कम किया जाता है तो दूसरी तरफ लाभदायी उत्पादकता को बढ़ाया जाता है ताकि किसान कृषि से कमाई की ओर जा सके...

उन्नत राष्ट्र का आधार-उन्नत कृषि

किसी भी राष्ट्र की उन्नति का आधार वहाँ का प्राथमिक क्षेत्र होता है अर्थात् कृषि व खनिज से संबंधित उत्पादों की उपलब्धता ही उस राष्ट्र के विकास के आधार घटक होते हैं, चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है अतः उन्नत भारत की कल्पना उन्नत कृषि की संकल्पना का ही फलन है। आई.आई.टी. दिल्ली (7-8 सितम्बर 2014) में उन्नत भारत अभियान विषय पर कार्यशाला में शिक्षामंत्री श्रीमती स्मृति ईरानी ने कहा था कि ‘स्वावलम्बी भारत का निर्माण गाँव व कृषि उत्पादों के उन्नत स्वरूप पर निर्भर है, इसलिए हमारी नई पीढ़ी को भारत के विशाल प्राथमिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र विकास की कुंजी कृषि उत्पाद, जल संरक्षण, वैकल्पिक उर्जा स्त्रोत, ग्रामीण उद्योग, मूलभूत सुविधाओं व महत्त्वपूर्ण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में निहित है, अतः उक्त दिशाओं में कार्य करना उन्नत भारत के जागरण का शंखनाद है। यहाँ हमें समझाना होगा कि उन्नत कृषि के लक्ष्य का आधार केवल राष्ट्र विकास नहीं बल्कि मानव जाति की उदर-पूर्ति का बंदोबस्त भी है इसलिए कृषि हमारे वास्तविक विकास का मूल है क्योंकि भारत की 80 प्रतिशत जनता प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करती है जबकि अमेरिका की मात्र 2 या 3 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी हुई है इसलिए हमे यह अच्छी तरह से जानना होगा कि कृषि व कृषक लोग ही मानव सभ्यता व विकास के जनक हैं अर्थात् जहाँ कृषि होती है वहीं अन्य कलाएँ भी पनपती है...

निष्कर्ष

अंत में लेकिन अंतिम नहीं, हम कह सकते हैं कि उन्नत भारत के सार में उन्नत कृषि का भार ही लगा हुआ है। राष्ट्रों के विकास की गाथा-यात्रा में कृषि का विकास एक प्राथमिक सोपान है, जिसकी चहल और पहल पर, किसी भी देश के विकास-ग्रंथ की राह मिलती है। हम कह पायेंगे जय जवान... जय किसान... ❑

वर्तमान में मानव सशक्तीकरण का प्रमुख साधन शिक्षा है। शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था, युगानुकूल विद्यालय व्यवस्था, भवन एवं पर्याप्त शिक्षक, नवीन तकनीक द्वारा सुसज्जित विद्यालय की स्थापना होने पर ग्रामीणों का जीवन में सुधार किया जा सकता है। शिक्षा के कारण ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के मध्य अन्तर कम किया जा सकता है। विशेषकर बालिका शिक्षा के द्वारा परिवार को शिक्षित करने का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है।

ग्रामीण विकास की अवधारणा, बाधाएँ एवं शिक्षा की भूमिका

बजरंग प्रसाद मजेजी

स्वतंत्र लेखक एवं चिंतक

भारत कृषि प्रधान देश है। ग्रामों में 70 प्रतिशत आबादी रहती है। इसमें 60 प्रतिशत किसान कृषि पर आधारित जीवन-यापन करते हैं। कृषि उत्पादन से मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। कृषि से मानव,पशु, पक्षी सभी का जीवन चलता है। इस कारण कृषि का महत्त्व है। इसके अतिरिक्त देश की आर्थिक स्थिति पर भी कृषि उत्पादन से होने वाली आय से देश की पंचवर्षीय योजनाओं की क्रियान्विति होती है। सरकार के बजट पर कृषि आधारित उपज का प्रभाव रहता है। अनावृष्टि या अतिवृष्टि से प्राय: फसलों को नुकसान होता है। इससे किसान को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। फसल पर वर्षा के प्रभाव से उत्पादन में कमी का प्रभाव महँगाई के रूप में जनता को प्रभावित करता है। भारत की आर्थिक स्थिति का बड़ा भाग पैदावार पर निर्भर है। फसलों के नुकसान होने पर बजट की बहुत बड़ी राशि मुआवजे के रूप में किसानों को देनी पड़ती है। जैसाकि वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा किसानों को 6 हजार वार्षिक की सहायता, फसल बीमा द्वारा आर्थिक सहायता तथा किसानों को ऋण सुविधा द्वारा मदद की जाती है। केन्द्र सरकार की अवधारणा है कि कृषि कार्य से किसानों को लाभ होगा तो देश की बड़ी आबादी (किसान) खुश रहेगी। उनकी आर्थिक स्थिति ठीक होने पर देश भी समृद्ध होगा।

ग्राम विकास की बाधाएँ - किसानों की गरीबी के कारण

पारम्परिक विधि से खेती करना

प्राचीन काल से किसान पशुओं की सहायता से हल जोतकर, गाड़ी के द्वारा कृषि करता आ रहा है। पारम्परिक रूप से फसल लेने की मानसिकता के कारण खेत में फसलों का बदलाव न करके, पूर्वानुसार फसल लेता है। इस कारण भूमि की उर्वराशक्ति कम हो जाती है तथा मात्र खाद्य जिन्स के उत्पादन पर ध्यान रखने के कारण आर्थिक लाभ नहीं ले पाता है। ऐसी फसलें जिन्हें बेचकर धन प्राप्त होता है, उनको उपयोग में लेने में अभी भी हिचक रहा है, उसका सम्मान नकदी फसलों के प्रति उत्साही नहीं है। यद्यपि कुछ प्रान्तों में आधुनिक कृषि उपकरणों के प्रयोग और बदलकर उत्पादन करने की इच्छा से किसानों को अच्छा लाभ हो रहा है। इसका प्रभाव किसानों की मानसिकता बदल तो रहा है परन्तु महँगे उपकरण (ट्रेक्टर, ट्रोली, हल, बीजारोपण की मशीन) खरीदने की स्थिति में न होने के कारण तथा खाद-बीज महँगे होने और गाँवों तक आसानी से न मिलने के कारण, बहुत से किसान अभी पारम्परिक विधि से खेती कर रहे हैं। अन्तर इतना आया है कि पशुओं के स्थान पर किराये से उपकरणों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया है।

सिंचाई की सुविधा पर्याप्त न होना

भारत के अधिकांश गाँवों में नदी, नहरें, बाँध न होने के कारण आवश्यकता होने पर सिंचाई के लिए पानी नहीं मिल पाता है। किसानों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। इस कारण पानी की कमी से अपेक्षानुसार उत्पादन नहीं होता है। अधिकांश प्रांतों में भूमि में पानी बहुत नीचे चला गया है। यदि पानी है तो वह खारा (फ्लोराइड युक्त) है जो कृषि कार्य और पीने के लायक भी नहीं होता। इस कारण यदि फसल की सिंचाई में उपयोग ले लें तो फसल और जमीन दोनों को नुकसान होता है।

कृषि की नई तकनीक का ज्ञान न होना

वर्तमान में देश में कृषि पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र में कृषि यंत्रों के उपयोग, कम पानी चाहने वाली फसलों का उत्पादन, फव्वारा पद्धति से सिंचाई द्वारा आशानुकूल उत्पादन लिया जा रहा है। कई प्रांतों में सुदूर रहने वाले किसानों को इनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। नई तकनीक का उपयोग कर पाने के कारण किसान पिछड़े हुए हैं। उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है।

यातायात के साधनों की कमी

देश में अभी भी कई ऐसे गाँव हैं जो शहर से दूर तथा उनसे कटे हुए हैं। सड़कें न होना, नदी, नालों पर पुल न होने से वर्षा ऋतु में ऐसे गाँव शहर से अलग-थलग पड़ जाते हैं। उनका जीवन यापन दूभर हो जाता है। यातायात के साधनों की कमी से उत्पादित फसलों को मंडी तक नहीं ले जा पाते हैं। व्यवसायी बहुत कम दाम में उनकी फसल खरीद लेता है। कई बार ऐसी स्थिति आती है कि किसान का खर्च भी नहीं निकलता है।

उद्योग धन्धों की कमी

यातायात, पानी की कमी या खराब पानी की वजह से गाँवों में लघु उद्योग, बड़े कारखाने, फैक्ट्रियाँ नहीं खुल पाती हैं। उद्योगपति वांछित आवश्यकता की पूर्ति न पाकर, गाँवों में नहीं जाना चाहता है। विद्युत समस्या भी इसका एक कारण है। इस कारण किसान को फसल का लाभ नहीं मिल पाता है।

पलायन

गाँवों में अभावग्रस्त जीवन, कृषि उत्पादन में कमी, पानी एवं विद्युत की कमी, रोजगार न मिलने के कारण किसान मजदूरी करने शहर की ओर पलायन करते हैं। शहर में ठेकेदार द्वारा उनको मजदूरी और आवास की अस्थाई व्यवस्था मिल जाती है। ऐसा भी देखा जा रहा है कि कालान्तर में किसान शहर में ही बस जाता है। बालकों की शिक्षा व्यवस्था गाँव में समुचित न होने के कारण भी वर्तमान में ग्रामवासी शहर में रहना पसन्द करने लगे हैं। स्वास्थ्य सुविधा न मिलने के कारण, मजदूरी के लिए, दूषित पानी से रक्षा के लिए ग्रामीण शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। कई गाँवों में वर्तमान में 25 प्रतिशत ही ग्रामवासी रह रहे हैं।

अशिक्षा के कारण भारत की ग्रामों में रहने वाली अधिसंख्य ग्रामवासी देश के विकास की कई योजनाओं से आज भी अनभिज्ञ हैं। वे पारम्परिक रूप से अभावों में खेती करके, उपलब्ध सुविधाओं से कठिनाई से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। देश-दुनिया में कितना विकास हो रहा है, इसे दूरदर्शन द्वारा देखते हैं तो वे मन मसोस कर रह जाते हैं। उनमें हीनता की भावना आती है।

पंचवर्षीय योजनाओं की जानकारी न होना

सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा सभी क्षेत्रों में विकास किया जाने का प्रयत्न हो रहा है। परन्तु, कर्मचारी गाँव के किसानों को योजनाओं की जानकारी नहीं देते हैं। सरकारी मशीनरी और भ्रष्टाचार के कारण ग्रामीण जनता को लाभ नहीं मिल पा रहा है। ग्राम में गिरदावर, पटवारी, ग्राम सेवक, स्वास्थ्य कर्मचारी पूरे समय गाँवों में नहीं रहते हैं। इस कारण तथा यदि योजना का लाभ लेना हो तो शहर के कार्यालय के चक्कर लगाने के बाद भी प्राप्त असफलता के कारण गरीब किसान की स्थिति में सुधार नहीं हो पा रहा है।

गरीबी रेखा के नीचे ग्रामीण

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60 प्रतिशत से 2005 में 41 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे हैं। निर्धनों की आबादी 1977-78 में 51.3 प्रतिशत थी। वर्ष 1993-94 में 30 प्रतिशत रही तथा 2004 में 27.5 प्रतिशत बताई गई है। वर्ष 2015 तक 23.6 प्रतिशत अर्थात् 53

मिलियन व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे हैं। इनके उत्थान के लिए सरकार को समुचित कदम उठाने होंगे।

शिक्षा से ग्राम विकास की बाधाएँ दूर होंगी

अशिक्षा के कारण भारत के ग्रामों में रहने वाले अधिसंख्य ग्रामवासी देश के विकास की कई योजनाओं से आज भी अनभिज्ञ हैं। वे पारम्परिक रूप से अभावों में खेती करके, उपलब्ध सुविधाओं में कठिनाई से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। देश-दुनिया में कितना विकास हो रहा है, इसे दूरदर्शन द्वारा देखते हैं तो वे मन मसोस कर रह जाते हैं। उनमें हीनता की भावना आती है। उद्योगों, कृषि क्षेत्र, प्रौद्योगिक क्षेत्र, संचार, यातायात, तकनीक विकास, शिक्षा, चिकित्सा, अन्तरिक्ष, आन्तरिक सुरक्षा में हो रहे विकास की समुचित जानकारी और उसका लाभ उन्हें नहीं मिल पा रहा है। इस कारण रूढ़िवादी, परम्परागत कृषि, अन्धविश्वास के साथ गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। इसका प्रमुख कारण अशिक्षा है। वर्तमान में मानव सशक्तीकरण का प्रमुख साधन शिक्षा है। शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था, युगानुकूल विद्यालय व्यवस्था, भवन एवं पर्याप्त शिक्षक, नवीन तकनीक द्वारा सुसज्जित विद्यालय की स्थापना होने पर ग्रामीणों का जीवन में सुधार किया जा सकता है। शिक्षा के कारण ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के मध्य अन्तर कम किया जा सकता है। विशेषकर बालिका शिक्षा के

द्वारा परिवार को शिक्षित करने का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है। सरकार इस ओर प्रयत्नशील है। आवश्यकता वर्तमान व्यवस्था को दूर कर, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए समुचित क्रियान्विति की है।

ग्राम विकास के सरकारी प्रयास

केन्द्र सरकार द्वारा 1952 से प्रथम पंचवर्षीय योजना के आधार पर 2006 तक 10वीं पंचवर्षीय योजना में निहित ग्राम विकास की कई योजनाओं की क्रियान्विति कर रही है। इसमें ग्राम भण्डारण योजना, सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, ज्ञान केन्द्र, राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन योजना, नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा बालिका विद्यालय, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना, सहकारी संस्थाओं द्वारा ग्रामीणों को आर्थिक लाभ देना,

आर्थिक सुधार एवं सामाजिक बदलाव, सभी योजनाओं में जनता की भागीदारी से सुदूर ग्रामों तक लाभ पहुँचाना, कृषि एवं भूमि सुधार, बेरोजगारी समाप्त करने के प्रयत्न, बुजुर्गों को पेंशन जैसी कई योजनाओं से वर्तमान सरकार ग्राम विकास के लिए प्रयत्नशील है।

बाढ़ से बचाने हेतु नदियों को जोड़ने की आवश्यकता

वर्तमान सरकार ने गाँवों को शहर से जोड़ने के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया है। देश की कई नदियों के कारण प्रायः प्रतिवर्ष बाढ़ आती है। इस कारण जनधन हानि के साथ शहर, गाँव, खेत-खलिहान, जीवनयापन की सामग्री बाढ़ में बह जाती है। सरकार को बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र में प्रभावितों को पुनः स्थापना हेतु अरबों रुपये प्रतिवर्ष सहायता राशि देनी पड़ती है। यह समस्या भारत में वर्षों से चली आ रही है। शहर के शहर, बाढ़ में तबाह हो जाते हैं। इसके लिए सरकार को चाहिए कि वर्षा ऋतु समाप्त होते ही सुरक्षा प्रबन्ध की स्थाई योजना प्रारंभ करें। इस हेतु निम्न प्रकार की विशेष योजना बनाई जा सकती है-

- जिन नदियों से बाढ़ आती है या सदा बहती है, उनका वर्षा जल उस प्रांत की सदा न बहने वाली नदियों अर्थात् सूख गई हैं या जिन पर अवैध अतिक्रमण हो रहे हैं, उसमें मिलाने हेतु नहरें बनाई जाएँ।
- वर्षा में बाढ़ आने वाली नदियों का पानी बड़े-बड़े बाँधों में पहुँचाने के लिए नहरें बनाई जाए ताकि सिंचाई और पीने के पानी की सप्लाई हो सके।
- मनरेगा कार्य में होने वाले व्यय को प्रत्येक पंचायत से पास की पंचायत के ग्राम तक नहरों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया जाए तथा उन नहरों को नदियों से जोड़ दिया जाए तो ग्रामवासियों को मनरेगा का लाभ मिलता रहेगा तथा भविष्य में प्रत्येक ग्राम में नहरें बनने पर नदी, बाँध से जोड़ने पर सिंचाई सुविधा होने पर कृषि उत्पादन वृद्धि होगी तथा भूमि जल संरक्षण से कुओं, हैण्डपम्प में पानी की आवक बढ़ेगी। ❑

उन्नत कृषि, उन्नत राष्ट्र

डॉ. अरुण रघुवंशी
अर्थशास्त्री, भू. प्राचार्य,
राज. महाविद्यालय,
निवाई (राज.)

कृषि का आविष्कार मानव इतिहास में एक अविस्मरणीय उत्साहवर्धक घटना है। पाषाण युग में मानव ने कृषि की जानकारी प्राप्त की तथा उत्तरोत्तर यह प्रगति पथ पर बढ़ती चली गयी। ऋग्वेद के अनुसार अश्विन देवताओं ने मनु को हल चलाना सिखाया। तैतरीय उपनिषद का कथन है 'अन्न ही वस्त्र है। आर्यों ने भी अन्न मूलक कृषि कर्म को महत्त्व दिया था। उनके आलेख में अनं बहु कुर्वीत: तदवृत्तम वर्णित है। पं. दीनदयाल जी का भी यह मानना था कि जब तक कृषि के सभी अंगों का विकास नहीं होता देश के आर्थिक प्रश्न नहीं सुलझते। अत: उन्नत कृषि उन्नत राष्ट्र के लिए आवश्यक है।'

कृषि-परिदृश्य- उन्नत कृषि पर विचार करने से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि परिदृश्य पर संक्षिप्त विचार करते हैं- ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारतीय अर्थव्यवस्था मूलत: कृषि अर्थव्यवस्था ही बनी रही जो शासन की जमीदारी, रैथतवारी, महालवारी प्रथाओं के अन्तर्गत सिमटती रही तथा सामाजिक तनावों के बीच कृषक अपना जीवन निर्वाह करता रहा। पुरातन सभ्यता की परिपक्व कृषि शोषणपूर्ण नीतियों का शिकार बनती चली गयी तथा कृषि मात्र जीवन निर्वाह तक सिमट गयी।

देश स्वतन्त्र हुआ, यहाँ का मानव खुली हवा में सांस लेने की परिकल्पना के साथ कृषक अपने को बंधन मुक्त होने की आशा करने लगा परन्तु द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तीव्र औद्योगीकरण के हट ने तथा सेवा क्षेत्र (बैंकिंग , बीमा आदि) के विस्तार की चाह से कृषिगत क्षेत्र निरंतर पिछड़ता चला गया। अर्थात् सांस्कृतिक विरासत से उस पवित्र भूमि पर हल चलाने वाला 80 प्रतिशत कृषक अब मात्र 55.2 प्रतिशत कृषि कर्म में लिप्त रह गया। राष्ट्रीय आय में 1950-51 में अधिक से अधिक अर्थात् 53.7 प्रतिशत योगदान देकर गौरवान्वित करने वाला अन्नदाता अब मात्र राष्ट्रीय आय में 13.9 प्रतिशत योगदान दे कर खुश नहीं है। उन्नत कृषि से अभिप्राय हमारा मात्र उतना ही है कि हमारा कृषक प्रति हेक्टर कम लागत पर गुणवत्ता युक्त अन्न एवं अन्य उत्पाद उत्पादित करे। स्वतन्त्र रूप से अपने अन्न एवं उत्पाद को बेच सके उसे उत्पाद की पर्याप्त कीमत मिले ताकि वह जीवन निर्वाह योग्य कृषि के स्थान पर व्यावसायिक कृषि की ओर अग्रसर होकर, समृद्ध सम्पन्न एवं स्वाभिमानी स्व: पोषित कृषक बने।

भारत में उन्नत कृषि क्यों आवश्यक है?

जब इस प्रश्न पर हम विचार करते हैं कि उन्नत कृषि भारत के लिए क्यों आवश्यक है तो यह सामान्य सी परिकल्पना हमारे मन मस्तिष्क में आती है कि भारत गाँवों में निवास करता है, 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या जो गाँवों में निवास करती है उनमें से मात्र 55.2 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कर्म में लगी हुई है। लगभग 25 प्रतिशत जनसंख्या या तो प्रच्छन्न बेरोजगारी (छिपी बेरोजगारी) अथवा अंशकालीन बेरोजगारी की शिकार है। देश की जनसंख्या 2.1 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है तथा अब प्रश्न है कि 130 करोड़ की आबादी वाले इस विशाल देश के लिए खाद्यान्न एवं अन्य कृषि पदार्थों की माँग की पूर्ति कैसे करें? जब प्रतिवर्ष खाद्यान्न की माँग लगभग 290 टन होने की उम्मीद हो तो उस माँग की पूर्ति के लिए कृषि को उन्नत तो

बनाना ही होगा।

कृषि क्षेत्र केवल अर्थव्यवस्था के पूंजी निर्माण में सहयोग नहीं देता अपितु राष्ट्र की रीढ़ की तरह कार्य करते हुए औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों की मध्यस्त कड़ी भी है। अनेक बाजार–उत्पाद कृषि जनित ही है। कृषिगत पदार्थों का विदेशी निर्यातों में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। देश के निर्यातों में इस क्षेत्र का योगदान 8 प्रतिशत लगभग है। सरकारी क्षेत्र भी अपनी नीतियों के क्रियान्वयन में कृषि क्षेत्र पर आश्रित है। देश में उपभोग से लेकर, कृषिगत खाद्यान्नों की कीमतें अनिश्चित एवं अनियंत्रित रहती हैं तथा देश की भूखी आबादी को सस्ता अनाज एवं अन्य खाद्य पदार्थ देने की प्रतिबद्धता, सरकारी गोदामों को अन्न से भरने का संकल्प केवल कृषक ही लेता है गुणात्मक भोजन कृषक ही उपजाता है। यह तभी सम्भव होगा जब कृषि उन्नत हो।

एक अन्य दृष्टि से इस पर विचार करें राष्ट्र में 1951–56 के बीच प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 419 ग्राम थी जो 1996–2001 के बीच 451 ग्राम हो गयी तथा दालों की उपलब्धता इसी समय में 33 ग्राम कम हो गयी। 55 वर्षों में दालों की उपलब्धता में 49 प्रतिशत की कमी भोजन में प्रोटीन की कमी को बताता है जिसका सीधा अर्थ यह है कि कहीं भोजन में प्रोटीन एवं गुणवत्ता की कमी हो जाना है। आधुनिकता की दौड़ में मोटे अनाज के उपभोग को भी कम करते चले आ रहे हैं जिसमें पर्याप्त कैलोरी एवं गुणवत्ता है। देश के लगभग 40 प्रतिशत किसान ऋण ग्रस्तता के शिकार हो गये हैं। उत्तर प्रदेश के गन्ना उत्पादक, महाराष्ट्र के कपास, उत्पादक तथा टमाटर उत्पादक की स्थिति भयावह है। सीमान्त कृषकों की स्थिति आज भी दयनीय है। लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या का खाद्य असुरक्षित है तथा 67 प्रतिशत कुपोषण के शिकार है मध्यप्रदेश, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, राजस्थान के कुछ क्षेत्र इसके उदाहरण हैं। अतएव ऋणग्रस्तता एवं कुपोषण से छुटकारा तभी प्राप्त हो सकता है जब भारत का किसान समृद्ध एवं कृषि उन्नत हो।

खाद्य सुरक्षा के लिए जितने बजट प्रावधानों की आवश्यकता है अनाज की पैदावार उतनी तेजी से बढ़ने की दरकार है। परन्तु उतनी तेजी से बढ़ नहीं रहा। हरित क्रान्ति का झंडा उठाने वाले राज्य जैसे पंजाब, हरियाणा आज थक चुके हैं। शहरीकरण की दौड़ में कृषि योग्य उपजाऊ जमीन को अधिगृहीत किया जा रहा है राज्य का किसान किसानी छोड़ने को मजबूर है। ऐसे में जब सरकार खाद्य सुरक्षा के लिए विदेशों का रुख करेगी तब क्या हमें हमारी कृषि की उन्नति की चिन्ता नहीं सताएगी।

प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता पर विचार करें तो वर्तमान में खाद्य उपलब्धता उतनी नहीं है जितनी आवश्यक है। अनाज की उपलब्धता 420 ग्राम प्रतिदिन है जो अन्य देशों की तुलना में कम है। एक उदाहरण लेते हैं चावल (धान) की उपलब्धता मिस्र में 1028 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। म्यांमार में 3077 किग्रा प्रति हैक्टेयर तथा अमेरिका में 8092 किग्रा प्रति हैक्टेयर है। भारत में यह 2186 किग्रा प्रति हैक्टेयर है। गेहूँ की उत्पादकता पर विचार करें तो यह चीन में 4608 किग्रा प्रति हैक्टेयर, पाकिस्तान में 2716 किग्रा प्रति हैक्टेयर, इंग्लैण्ड में 7225 किग्रा प्रति हैक्टेयर तथा भारत में 2704 किग्रा प्रति हैक्टेयर है अर्थात् विश्व परिदृश्य में हम उत्पादकता के क्षेत्र में गरीब राष्ट्रों से भी पीछे हैं दालों की उत्पादकता पिछले 55 वर्षों में हम 49 प्रतिशत कमी महसूस कर रहे हैं। प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग पर विचार करें तो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग 1972–73 में 1504 था जो 1999–2000 में 1626 हो गया, मध्यम वर्ग में 2170 से घटकर 2009 रह गया उच्च वर्ग में 3161 से घटकर 2463 रह गया। अर्थात् निम्न एवं मध्यम वर्ग की आबादी का 70 प्रतिशत आज भी न्यूनतम कैलोरी प्राप्त नहीं कर पाया। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वी.के.आर.बी.राव कृषि एवं अनाज की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन की वृद्धि दर को 4 प्रतिशत मानते हैं तथा खाद्यान्न की वृद्धि दर 6 प्रतिशत मानते हैं। जबकि भारत की कृषि उत्पादन वृद्धि दर 2.3 प्रतिशत लगभग है। अतएव 4 प्रतिशत वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए उन्नत कृषि आवश्यक है।

भारत एक-कल्याणकारी राष्ट्र है तथा कृषि यहाँ की जीवन-धारा है उत्पादन निष्पादन की जानकारी लें तो कृषि आर्थिक कीमतों की स्थिरता का यन्त्र है, खाद्य सुरक्षा की आधारशिला है। कृषि मानसून पर निर्भर है। 2001-02 में सामान्य वर्षा से वर्षा 8 प्रतिशत की कमी रही परन्तु कृषि उत्पादन में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2009-10 में वर्षा में 22 प्रतिशत गिरावट हुई तथा उत्पादन 7 प्रतिशत गिरा 2013-14 में वर्षा सामान्य से 6 प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई कृषि उत्पादन 5 प्रतिशत बढ़ा। उपर्युक्त विश्लेषण तो यह बताता है कि भारत अब मानसून का जुआ तो नहीं रहा।

आज हम दूसरे दौर की हरित क्रान्ति की ओर बढ़ने की बात कर रहे हैं परन्तु कृषक अपनी कृषि से प्राप्त आय से निराश हैं तथा कृषि जैसे पवित्र कर्म को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं क्योंकि कृषक कृषि से उतना नहीं कमा पा रहा जितना एक मजदूर प्राप्त करता है। इसका कारण यह है कि कृषि क्षेत्र में विनियोग घटता जा रहा है 49 प्रतिशत किसानों ने तो एनएसएसओ को यह कह दिया है कि कृषि फायदे का सौदा नहीं रहा। कृषि में अग्रणी राज्य के बारे में पीएयू का दावा है कि यहाँ के प्रत्येक परिवार पर 1.89 लाख का कर्ज है।

नेशनल क्राइम ब्यूरो तो निरंतर कह रहा है कि भारत का कृषक निरंतर आत्महत्या की ओर अग्रसर हो रहा है। अतएव कृषि उन्नति हेतु यह आवश्यक है कि कृषि पर निवेश बढ़ाया जाए। जब कृषि विनियोग में कमी होती है तो उससे कृषि में कम पूँजी निर्माण होती है। और उसका सीधा प्रतिकूल प्रभाव सिंचाई एवं आन्तरिक संरचना पर होता है जो कृषि निवेश 1990 में 9.9 प्रतिशत (1993-94 की कीमतों पर) था वर्तमान में लगभग 2 प्रतिशत पर आ गया है जो यह दर्शाता है कि कृषि क्षेत्र से खराब निष्पादन होगा। कृषि शृंखला बिखरेगी तथा यह क्षेत्र उपेक्षित होता जायेगा। अतएव कृषक की मुस्कुराहट हेतु उन्नत कृषि की दरकार है।

आज कृषि की उन्नति को विश्व के परिदृश्य में भी देखना होगा। नब्बे के दशक की बात करें तो इस समय अमेरिका एवं पश्चिमी सम्पन्न देशों के बीच विकासशील दुनिया के बाजारों पर आधिपत्य जमाने की होड़ लगी हुई थी। सभ्यताओं के संघर्ष के इस युग में विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य कृषि को लेकर गम्भीर मतभेद हैं। मूल प्रश्न कृषि में उदारीकरण का है। विकसित देशों का कृषि व्यापार में अंश 81 प्रतिशत है तथा भारत का लगभग 1.5 प्रतिशत। अतएव विश्व के विकसित देशों की आक्रामक नीति तथा विश्व व्यापार संगठन से (W.T.O.) में कृषि एवं सहायक क्रियाओं पर व्यय निरंतर घटता चला गया तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र पर व्यय बढ़ता चला गया। परिणाम-स्वरूप कृषि क्षेत्र राष्ट्र उन्नति में जितना योगदान दिया जाना चाहिए था नहीं दे पाया। इसके अनेक कारण भी गिनाए जा सकते हैं। कृषि विकास युक्ति पर पुनर्विचार की जरूरत को महसूस भी किया गया। कृषि नीति का रुख संस्थागत सुधारों से हटकर औद्योगीकरण की तकनीक की तरफ किया गया। किसानों को दिया जाने वाला मूल्य तथा उपभोक्ता तक वस्तु पहुँचने का मूल्य दोनों में बहुत अन्तर है। अतएव कृषि बिचौलियों को दूर करने की आवश्यकता है। टुकड़ों में कृषि सुधार के स्थान पर उपज रखने के तरीकों में सुधार, प्रसंस्करण, संबंधी ठोस प्रयास, उपज की कम क्षति हो तथा उपज परिवहन तथा प्रशीतन हेतु प्रयास किया जाना चाहिए। कृषि जिन्सों की माँग-पूर्ति में अन्तर है अतः अतिरेक वाले क्षेत्रों की पहचान कर माँग वाले क्षेत्रों तक पहुँचाना सूचना तंत्र को सबल बनाना आदि कृषि उन्नति हेतु आवश्यक है।

हाल ही में मानव विकास सूचकांक में भारत का स्थान गिरकर 133 वाँ हो गया है अर्थात् तृतीय विश्व के राष्ट्रों से भी पीछे। योजनाओं के 70 वर्ष की लम्बी यात्रा के बाद भी कृषि संरक्षण की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाए। उदारवादी यात्रा के पथ का मार्ग कुछ समय के लिए धीमा कर ग्रामीण कृषि की ओर मोड़ा जाए। संसाधनों के सशक्तीकरण के साथ कृषि क्षेत्र में अलगाव का कारण खुलापन है। अतएव आज की आवश्यकता है कि उन्नत राष्ट्र निर्माण हेतु कृषि क्षेत्र में उपज की तकनीक में सुधार लाएँ। प्रसंस्करण संबंधी सुधार लाएँ। कृषक की उपज को बाजार तक पहुँचाने हेतु कुशल परिवहन की व्यवस्था करावें। कृषि क्षेत्र में ढाँचागत कमियों को सुधारने की आवश्यकता है। वर्षा आश्रित क्षेत्रों का पूरा दोहन नहीं किया जा रहा, जल संरक्षण पर्याप्त मात्रा में नहीं है। अतएव न्यूनतम समर्थन मूल्य की फिर से समीक्षा कर बहुआयामी रणनीति अपनाई जाए। उपज में पूँजी उन्मुख खाद्यान्नों का इस्तेमाल बढ़ने से उपभोक्ता तथा पूँजीगत सामान की माँग बढ़ती है जिससे खाद्यान्न कीमतें भी बढ़ती हैं। शाकाहारी समुदाय कृषिगत पदार्थों का उपभोग उच्च कीमतों (विशेषकर तेल की कीमतों में वृद्धि से) में वृद्धि से घटता है। राष्ट्र में समस्या कृषि उत्पादन ही नहीं भण्डारण की भी है। सरकार की भण्डारण क्षमता 4.40 करोड़ थी अर्थात् 1.62 करोड़ टन अनाज खुले में रहता है। वैश्विक दबाव में कृषि अनुदान में कटौती नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इस कटौती से सीधा-सीधा कृषि उत्पादन लागत में वृद्धि करेगा। बिचौलियों की कमी, आपूर्ति शृंखला को मजबूत बनाना तथा सहकारिता में भ्रष्टाचार तथा राजनैतिक परिदृश्य पर भी कठोर नजर रखने की आवश्यकता है ताकि कृषि उन्नत हो तथा कृषि विकास दर बढ़े।

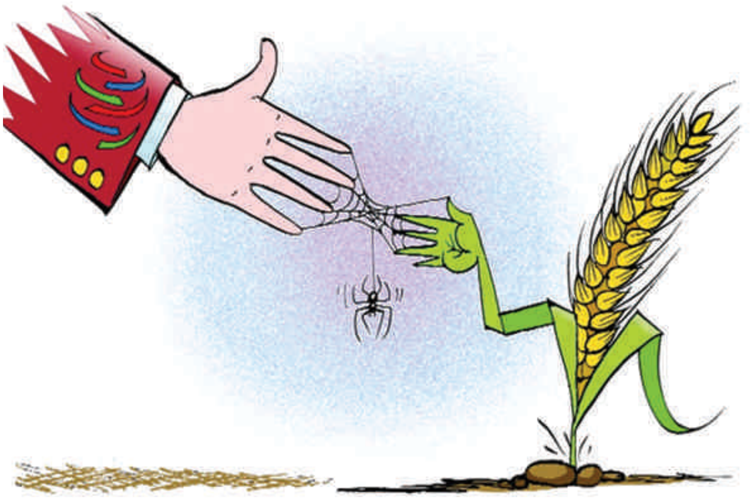

उन्नत कृषि-उन्नत राष्ट्र

उन्नत कृषि उन्नत राष्ट्र का निर्माण करती है। अर्थ व्यवस्था में कृषि की स्थिति विकासशील देशों में अधिक महत्त्वपूर्ण तथा विकसित देशों में कम महत्त्वपूर्ण है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि जैसे-जैसे विकास आगे बढ़ता है सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कृषि का अंश घटता है- (हिस्सेदारी घटती है)

तथा द्वितीयक एवं सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ती है। उन्नत राष्ट्र के निर्माण में कृषि की केन्द्रीय भूमिका के बारे में दो दृष्टिकोण है इसमें प्रथम विचार यह मानना है कि समग्र आर्थिक परिवर्तन के लिए कृषि क्षेत्र का विकास आवश्यक है क्योंकि यह पूर्ति-चेन के रूप में कार्य करती है तथा तीव्र औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कृषि क्षेत्र को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। दूसरी विचारधारा में यह माना जाता है कि तीव्र औद्योगीकरण की प्रक्रिया में कृषि क्षेत्र दरकिनार होता है। तथा कृषि विकास की प्रगति केवल घरेलू औद्योगिक विकास के लिए ही होती है। परम्परागत कृषि निर्वाह स्तर तक होती है। तथा विकास के साथ यह वाणिज्य कृषि में परिवर्तित होती है। तीव्र औद्योगीकरण से श्रमलागत में वृद्धि होती है, तकनीकी प्रगति के साथ पूँजी निवेश बढ़ता है। प्रो. लुइस के अनुसार अधिशेष कृषक मजदूर औद्योगीकरण की ओर प्रवृत्त होते हैं। उन्नत राष्ट्र निर्माण में कृषि उन्नति की भूमिका पर विचार हम भारतीय कृषि की स्थिति तथा उन्नति हेतु किये जाने वाले प्रयासों के मूल्यांकन के आधार पर करेंगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र के प्रदर्शन पर विचार करते हैं- अठारवीं शताब्दी में कृषि उद्योग, निर्माण उद्योगों के सहयोगी के रूप में कार्यरत था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त तथा 1966 की हरित क्रान्ति के बाद भारतीय कृषि में बदलाव आया तथा राष्ट्रीय आय में इस क्षेत्र का योगदान दो तिहाई हुआ जो वर्तमान में 13.9 प्रतिशत (लगभग 14 प्रतिशत) रह गया है। यद्यपि विकसित देशों की तुलना में यह अधिक है क्योंकि जापान में यह एक प्रतिशत, अमेरीका में यह एक प्रतिशत, इटली में दो प्रतिशत है। वर्तमान में विकसित राष्ट्र की परिभाषा में विकास के साथ द्वितीयक क्षेत्र (खनन, उद्योग) एवं तृतीयक क्षेत्र (बैंकिंग, सेवाएँ) आदि का अंश राष्ट्रीय आय में बढ़ता है। विकसित राष्ट्र की चाह में हमारा देश भी शामिल हो, यह चाह प्रत्येक देश में होती

है और यह सही भी है - इसी होड़ के कारण योजना काल में पर्याप्त मात्रा में सुधार किया। आर्थिक सुधार काल में कृषि उत्पादकता में गिरावट दिखायी पड़ती है। 1980 के दशक में वृद्धि दर 2.9 प्रतिशत 1990 के दशक में 2 प्रतिशत तथा 2000 से 2012 तक 2.4 प्रतिशत रही (वर्ष 2007) डॉ. भल्ला का यह कथन कि राष्ट्र में योजना परिव्यय में गिरावट से (जो कि द्वितीय योजना से अब तक) ग्रामीण आधार संरचना के विकास में बाधक रहा। इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कीटनाशक दवाएँ जहरीली होती हैं परन्तु आज कृषक सब्जी, अनाज आदि के उत्पादन में इनका भरपूर प्रयोग कर रहे हैं। चिन्ता का विषय है।

भारत एक-कल्याणकारी राष्ट्र है तथा कृषि यहाँ की जीवन-धारा है उत्पादन निष्पादन की जानकारी लें तो कृषि आर्थिक कीमतों की स्थिरता का यन्त्र है, खाद्य सुरक्षा की आधारशिला है। कृषि मानसून पर निर्भर है। 2001-02 में सामान्य वर्षा से वर्षा 8 प्रतिशत की कमी रही परन्तु कृषि उत्पादन में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2009-10 में वर्षा में 22 प्रतिशत गिरावट हुई तथा उत्पादन 7 प्रतिशत गिरा 2013-14 में वर्षा सामान्य से 6 प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई कृषि उत्पादन 5 प्रतिशत बढ़ा। उपर्युक्त विश्लेषण तो यह बताता है कि भारत अब मानसून का जुआ तो नहीं रहा। आज कुल विद्युत खपत का 21 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में किया जा रहा है। अधिक उपज देने वाली फसलों की किस्मों में सुधार हुआ है। यद्यपि हरित क्रान्ति मुख्यतया गेहूँ तक सीमित रही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में ट्रेक्टरों का उत्पादन नहीं होता था आज 06 लाख ट्रेक्टर, 32 लाख पम्पसेटों का हम उत्पादन कर रहे हैं। संस्थागत साख जो कृषकों को दी जाती है वह 71 प्रतिशत है।

आज हम स्वयं को कृषि क्षेत्र में (खाद्यान्न) में आत्मनिर्भर होने का गर्व महसूस करते हैं परन्तु राष्ट्र की उन्नति में अभी भी कृषि क्षेत्र में अनेक चिंताएँ भी हैं जो कृषि की उन्नति में बाधा उत्पन्न करती है हमें इन्हें दूर करने हेतु ठोस प्रयास करने चाहिए -

खेती-खेतिहर किसान को राष्ट्रीय एजेण्डे में शामिल किया जाना चाहिए। संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन कृषियोग्य जोतों में कमी (छोटे) कर रहे हैं जो कृषि को केवल निर्वाह योग्य कृषि तक सीमित रख पाते हैं अतएव बढ़ती आबादी के इस सैलाब को उत्तम गुणवत्तता युक्त भोजन उपलब्ध कराने हेतु अन्न दाता को संरक्षण आवश्यक है।

राष्ट्र की कृषि जब परम्परागत कृषि हो। नवीनता एवं अन्वेषण हमारे निचले कृषक तक (सीमान्त, लघु) नहीं पहुँच रहे हों तथा प्रति हैक्टेयर लागत कृषि में

अधिक हो। कृषि क्षेत्र में बुवाई में उच्चावचन हो (मकड़जाल) जैसे सरसों की 2020 की बुवाई 2019 की कीमतों के आधार पर की जाती है (माना यह 8000 रु. प्रति क्विंटल है) तो किसान को अब अधिक रकबे में बुवाई होगी को दृष्टिगत प्रतियोगिता का सामना करने हेतु कृषि क्षेत्र की उन्नति करना ही होगा। राष्ट्र के उन्नयन एवं कृषि विकास हेतु हमें आदा (Inputs) साधन तथा उत्पादन, प्रादा (output) पर विचार करना भी आवश्यक होगा। राष्ट्र में खाद-बीज की कीमतों में काफी उतार चढ़ाव तथा असमानता रही है। उच्च कोटि के खाद बीज की कीमत हरियाणा में 27.5 रु. प्रति किग्रा तथा बिहार में 40 रु. प्रति किग्रा है। मक्का का बीज 15 रु. प्रति किग्रा से 36 रु. प्रति किग्रा तक विभिन्न राज्यों में मिलता है। उच्च कोटि के गेहूँ का बीज स्थानीय बाजार में कर्नाटक में 41 रु. प्रतिकिग्रा तथा मध्य प्रदेश में 18 रु. प्रति किग्रा तक मिलता है।

उर्वरक उपभोग की बात करें तो नाइट्रोजन युक्त उर्वरक गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, पंजाब में 59 रु. प्रति किग्रा तक तथा हिमाचल में 14.75 रु. प्रति किग्रा तक प्राप्त हाता है। डीएपी खाद कई राज्यों में 20 रु. प्रति किलो तथा कई राज्यों में 31 रु. प्रति किग्रा प्राप्त होता है। उर्वरक का उपभोग पंजाब में 243.6 किग्रा प्रति हैक्टेयर होता है। जबकि मध्यप्रदेश में 88.4 किग्रा प्रति हैक्टेयर तथा उड़ीसा में 56.5 किग्रा प्रति हैक्टेयर है। राष्ट्रीय औसत 144.5 किग्रा प्रति हैक्टेयर है।

क्या बिजली कृषक को पर्याप्त मिलती है? प्रश्न का प्रत्युतर यह है कि राजस्थान में 5 से 6 घंटे, हिमाचल में 8 से 20 घंटे, उत्तर प्रदेश में 10-12 घंटे, मध्यप्रदेश में 8-10 घंटे औसत बिजली मिलती है। राष्ट्र में कृषि श्रमिकों में बिखराव है, आधिक्य है तो आसाम, अरुणाचल, गुजरात आदि राज्यों में कमी है। एक तरफ कृषक मजदूर की 300-350 रु. प्रति दिन मजदूरी मिलती है तो महिला कृषि मजदूर को 250-300 रु. प्राप्त होता है। डॉ. पी.डी. धवन ने अपने आलेख में (1983-84) में सिंचित क्षेत्र पर उत्पादकता 22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्र पर 9 क्विंटल प्रति हैक्टेयर मानी।

प्रसिद्ध कृषि अर्थशास्त्री वी. हनुमन्ता राव ने 80 के उत्तरार्द्ध में कृषि उत्पादकता का अध्ययन कर लिखा कि सिंचित एवं असिंचित भूमि में अन्तर 2 से 6 गुना तक होता है।

राष्ट्र के कृषिगत क्षेत्र की विडम्बना यह है कि यहाँ पर कृषि क्षेत्र भिन्नताओं, आशंकाओं, अस्थिरताओं से भरा हुआ है। राष्ट्र में खुदकाश्त की परिभाषा यदि जमींदार परिवार का कोई सदस्य केवल देखरेख करता है तो उसे खुदकाश्त माना जायेगा। काश्तकारी सुधारों की बात करें तो लगान के नियम काश्त के अधिकार-मालिकाना हक आदि कुछ प्रदेशों जैसे उत्तर प्रदेश में तो सफल रहे परन्तु अन्य कई राज्य वंचित रहे। भारत में जोत बिखरे, असुरक्षित हैं बीजों का उपयुक्त संरक्षण नहीं होता जिससे पर्याप्त अंकुरण नहीं होता, फसल ठीक नहीं होती। हरित क्रान्ति के लाभ केवल पाँच फसलों - गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का तक अधिक सीमित रहे और तीन राज्य पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश इसमें अग्रणी रहे। कारण इन राज्यों ने मशीनरी का उपयोग तथा 2021 में उत्पादन में वृद्धि होगी परिणामस्वरूप 2021 में सरसों की कीमत कम होगी (माना यह 6000 रु. प्रति क्वि.) रह जाती है तो अब सरसों की फसल जो 2021 में बोई जाएगी, के रकबे में कमी होगी यह चक्र वर्ष प्रतिवर्ष चलता है अर्थात् बाजार में इसी प्रकार फसलों की कीमतों में उतार चढ़ाव रहता है। कृषि के उन्नयन के लिए यह आवश्यक है कि कृषक को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले। इस माँग-पूर्ति के जाल से कृषक तो मुक्त होना ही चाहिए। सरकार कृषक को संरक्षण देने के लिए लागत पर न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करती है। भारत में न्यूनतम समर्थन मूल्य वर्ष प्रतिवर्ष बदलता रहता है। सरकार ने स्वामीनाथन समिति के सुझावों को स्वीकारते हुए समर्थन मूल्य को डेढ़ गुना वृद्धि करने का संकल्प ले, क्रियान्विति कर दी है जो कृषि क्षेत्र में फिर से नई ऊर्जा का संचार करेगी परन्तु किसानों के मन के संकोच को जन-जागरण द्वारा दूर करना होगा। नीदरलैंड में जब कृषि कीमतों में कमी हुई (2007 के लगभग) तो सरकार ने कृषि क्षेत्र में संस्थागत परिवर्तन किए सरकार ने किसान को अपना उत्पादन बेचने हेतु स्वतन्त्र किया। कृषि के निचले स्तर पर कृषि उत्पादों के लिए श्रम पूँजी उत्पादन में परिवर्तन किए जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए।

संयुक्त राज्य अमेरिका में, जो कृषि उत्पादक का प्रमुख निर्यातक देश है जिसका दबदबा पूरा विश्व मानता है तथा विश्व के बाजारों में इनका आधिपत्य है। अमेरिका में अपने कृषि क्षेत्र में अधिशेष (Surplus) को अर्थात् पूंजी निर्माण (विनियोग) में वृद्धि की है। परम्परागत कृषि से वाणिज्य कृषि की ओर कदम बढ़ाया इसी कारण वहाँ कृषि उत्पादन (1860-1910) के बीच 3 गुना बढ़ा जिसे वहाँ कृषि क्रान्ति भी कहा जाता है इसमें सहकारिता विकास, तुलनात्मक लाभ कमाने की प्रवृत्ति, अवसरों को भुनाने की प्रवृत्ति, कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन, उत्पादन-शृंखला निर्माण मुख्य हैं। चीन हरित क्रान्ति से पूर्व कृषि उत्पादन में कमजोर था परन्तु इसके साथ नीदरलैंड, इंडोनेशिया आदि राष्ट्रों ने कृषि में जोड़े गये मूल्य में परिवर्तन किए। 2010 में इंडोनेशिया में जोड़ा गया मूल्य 76.9, चीन में 56.6, नीदरलैंड में 36.6, अमेरिका में 42.4 है, भारत में यह 20 से भी कम है। अतएव कृषि को उद्योग का दर्जा देकर उसमें जन फूंकनी होगी क्योंकि राष्ट्र की रीढ़ कृषि है। अर्थव्यवस्था में सर्वोच्च माँग क्षेत्र कृषि है। कृषि क्षेत्र स्फीति नियंत्रक है। यह सत्य है कि किसी भी प्रकार का सुधार बेहतरी के लिए होता है जिसमें यह सोच होती है 'सर्वे सन्तु सुखिन सर्वे सन्तु: निरामया' परन्तु आज कृषक अधिक लाभ की लालसा में कीटनाशक, दवाओं, इंजेक्शन आदि का प्रयोग कर गुणवत्ता युक्त उत्पाद के स्थान पर भार बढ़ाने वाले स्वास्थ्य विनाशक उत्पाद उत्पादित कर रहे हैं जो एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विरुद्ध है। हम तो वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा के पोषक हैं अतएव गुणवत्ता युक्त भोजन उपलब्ध कराने का विश्वास जनता को दिलाना आवश्यक है राष्ट्र की उन्नति का अर्थ जीडीपी में वृद्धि तो है परन्तु जीडीपी में वृद्धि कल्याणपरक हो तो हमारे मन से स्वत: ही निकलता है- **'हे मातृभूमि तुम्हें नमन है। तुम्हारे समर्पण से हमारे परिवार का भरण होता है आप धन्य हैं।'**

मातृभूमि पर उदारवाद का कठोर दंश नहीं चले यह हमारी स्वाभिमानी अवधारणा पर भारी न हो यह विचार भी विचारणीय है प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. ब्रह्मानंद ने कहा है कृषि क्षेत्र को खुला छोड़ने पर खासकर कृषक को परेशानी होगी। कृषि क्षेत्र में क्या ठहराव की स्थिति आ गयी है, उत्पादकता स्थिर हो गयी है। इस पर चिंतन तथा शोध की आवश्यकता है। मिट्टी की जाँच, तद्नुसार बीज तथा फसल का निष्पादन कृषि उत्पादकता में वृद्धि करेगा।

हमारे देश के किसान की समस्या यह भी है कि वह परम्परागत कृषि से बाहर नहीं आना चाहता। कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण स्थिर कीमतों पर 3.34 प्रतिशत है, कृषि में जो संरचनात्मक कमियाँ हैं उन्हें दूर किया जाना चाहिए। निजीकरण, शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्तियाँ कृषि क्षेत्र को कमजोर कर रही है किसान के पास पहले एक रुपये में से 20 पैसा सहायता के रूप में पहुँचता था परन्तु इस डिजीटल युग के लाभ कृषक को भी मिलने लगे हैं अब बिना क्षरण के पूरी सहायता राशि कृषक को प्राप्त हो रही है विडम्बना यह है कि कृषक इस राशि को कृषि कार्यों में व्यय न कर अन्य स्थानों पर व्यय कर देता है अतएव कृषक इस राशि को कृषि की बेहतरी के लिए ही काम में लें। किसी भी प्रकार के सुधार बेहतरी के लिए ही होते हैं तथा उसमें यह मन्तव्य होता है कि कृषक का जीवन बेहतर बने वह किसान भी पंजाब, हरियाणा के किसान की तरह उन्नत जीवन जिए। कृषक को भू-माफियाओं से बचाया जाए। अगली पीढ़ी के सुधार कृषक को सशक्तीकरण देंगे। जो नीतियाँ कृषकों को हानि पहुँचाती है, उनको सुधारा जाए। कृषि में गत्यात्मक सुधार नीचे तबके तक पहुँचे, कृषि में छुपी अपार सम्भावनाओं का प्रगटीकरण हो तभी कृषि की उन्नति उन्नत राष्ट्र का निर्माण करेगी।

भारत के उन्नत कृषि हेतु कृषि क्षेत्र में विनियोग वृद्धि या पूंजी-निर्माण में वृद्धि की आवश्यकता है। भारत में कुल राष्ट्रीय आय का 1.5 (लगभग 2) प्रतिशत निवेश किया जा रहा है। राष्ट्र की मुख्यधारा में जुड़ने के लिए कृषि विकास दर 4 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए तथा इस विकास दर को प्राप्त करने के लिए कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 10 प्रतिशत निवेश अथवा पूंजी निर्माण आवश्यक है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि उन्नत राष्ट्र के निर्माण में कृषि क्षेत्र जिसमें 54.7 प्रतिशत जनसंख्या कार्यरत है का योगदान कम से कम एक चौथाई जीडीपी में तो होना ही चाहिए और इसके लिए कृषक को भी भावात्मकता के साथ न जोड़कर व्यवसाय के रूप में लेना चाहिए। आर्थिक समष्टिगत सुधार (1991-92) का लाभ निजी कृषक को अधिक हुआ। चीनी-गन्ना, कपड़ा-कपास का उत्पादन बढ़ा।

कृषि उन्नति-उन्नत राष्ट्र की अवधारणा को साकार करने के लिए यह भी आवश्यक है कि सिंचाई, खाद, बीज, जोतों की चकबन्दी, आदि पर जोर दिया जाए। आज राष्ट्र की 60 प्रतिशत कृषिगत भूमि बरसात के पानी पर निर्भर है। कृषक केवल एक फसल भी मुश्किल से उगा पाता है तथा खाद्यान्न का उत्पादन 1.3 टन प्रति हैक्टेयर एक सिमटा हुआ है। कृषि क्षेत्र में जान फूँकनी होगी तथा इस क्षेत्र को अब सर्वोच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्र के रूप में विकसित करना होगा। सरकार ने कृषकों को 6000 रु. नकद अनुदान सहायता देकर इसकी शुरूआत कर दी है परन्तु कृषि लागत कम करने की दिशा में भी प्रयास अपेक्षित है। संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन जोत के आकार को घटा रहा है। 65 प्रतिशत जोत कृषि योग्य नहीं है। 2 हैक्टेयर के जोत में कृषक तकनीक का इस्तेमाल कैसे करेगा, सोच का विषय है, वर्तमान सरकार का सहकारी की तर्ज पर ऐसे जोतों का एकीकरण किसी को देकर लाभ प्राप्त किया जा सकता है यह सकारात्मक है। सरकार को कृषकों को भरोसे में लेकर आत्मविश्वास के साथ इस क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता है। ❑

Developing Villages Towards Developing Nation

Dr.T.S. Girishkumar
Member, ICPR
Vadodara (Gujrat)

Bharat is actually a village-based Nation, as the real Bharat is often found in the villages of Bharat. Our urban society is much influenced by the alien rule over this Nation for some thousand years, but amazingly, such influences are seen much less with the villages of Bharat. That is to say, the Sanskriti that is the essence of the Nation Bharat is still active in the Bharatiya villages with minimal impact from the long alien subjugation.

The structure of our villages is interesting as well as instructive. By and large, villages are autonomous, self-sufficient or in contemporary expression, Atmanirbhar. One may argue that their needs are much less than the urban class, but even that argument is also not very realistic. In the present times, villages have almost all amenities and facilities of urban societies, with minimal variations. The villagers also are almost equally updated like the urbans, especially with the facilities of internet connections.

Archetype village economy

Mainly, agriculture becomes the main source of income for the villages. Indeed, food production is very important for any society, and all food production is chiefly from our villages. Villages are self-sufficient in irrigation, water, and even markets. The present bill introduced by the government for the farmers actually is meant for the farmers, designed to make maximum benefits available to them, and to protect them from middle men who always try to make the best profit for themselves without anyone controlling them.

The administration of the villages is mostly done locally by the villagers themselves, through Panchayat system. This actually makes better interpersonal relations and better one to one correspondence in the village, leading to better co-existence of the people living.

Developing villages

Corporate existence of societies had become something of an inescapable nature. The business world, or the corporate world is also intimately connected with the industrial world. Industries are the ones that makes economic substructure of a society speedily stronger, albeit it is a fact that agricultural base of a society is very dependable and reliable. Agricultural substructure is more stable and dependable barring either natural disasters or social calamities, which are to be taken as exceptions. On the other hand, industrial stabilities vary drasti-

cally, given the manner in which technologies keep changing. Just the example of 'Nokia' mobile phone company is one recent example, and 'Kodak' company an example from yesterdays. Such instabilities with industries ought to be anticipated, and until one goes along with the changes in time, things can just collapse right in front of one's very eyes.

Here, the lesson is simple one. One must go for expansion with the industries and corporate world, but at the same time, one must appropriately maintain the agricultural world also. Industries are mostly urban oriented for so many practical reasons. Their transportation, availability of skilled workers, marketing and all such things shall go urban oriented as matter of natural course.

But there is always a role that villages can play in this game of development. The villages can create industrial units to produce supporting materials for the producing factories in the suburbs. The big industries can be made to outsource many things to the villages, and with proper training, the small-scale units in villages can meet the need of urban industries and with much lesser costs.

Such small-scale units shall improve the autonomy of the villages, and villagers can find extra job and income using their farm free seasons, and times. With such happenings, other facilities like education health care etc could naturally be improved in the villages as well.

Urban dependence on villages

As a matter of fact, with all the pomp and show, the urban society is dependent on the villages. Further, the Nation actually depends on the villages. Strengthening the villages shall amount to strengthening the urban society, and the nation itself. Indeed, villages are the real edifice of the urban existence, and then, the Nation itself. In a word, the roots are the villages. Should the roots get unattended, the entire superstructure shall simply collapse. In this sense, the villages become really very sensitive for a Nation to exist.

As a matter of fact, with all the pomp and show, the urban society is dependent on the villages. Further, the Nation actually depends on the villages. Strengthening the villages shall amount to strengthening the urban society, and the nation itself. Indeed, villages are the real edifice of the urban existence, and then, the Nation itself. In a word, the roots are the villages. Should the roots get unattended, the entire superstructure shall simply collapse.

Food gets supplied to urban societies from the villages, milk gets supplied to the urban societies from the villages, and it is the same case with vegetables, fruits and the like. Just like these things, the villages must be made competent to supply various industrial requirements by way of small industrial equipment including packing materials. Just like the food and other supplies from the villages, small and such relevant parts of the productions in big factories should also get going from the villages to the urban need.

With these, villagers shall no longer be just farmers alone, they shall also be artisans of various kind. They will have extra work to do, during their off-farming activities, and with appropriate time management, it is possible for a farmer also to be a skilled labourer or someone higher at the same time.

Along with such changes, one can envisage situations where very good schools to function and very good hospitals etc to function in the villages. To a great extent, such things shall retardate urbanisation and villages shall soon cease to have enigmatic attraction towards cities in good time. There is every possibility that there is going to be reverse migration from the cities to the villages, like what we see in places like Vrindavan and Mathura. Of course, the reason for reverse migration to such places are spiritual, but in our case, it is going to be not only for spiritual reasons, but also for cultural and reasons of positive living in good harmony with nature and other living beings.

To sum up, a well-structured, autonomous or Atmanirbhar village shall at once be going a very long way in making the Nation itself Atmanirbhar, well structured as well as economically strong with the additional Bharatiya phenomenon of Sanskritic existence, with much more stability, and much less susceptibility to negative and distracting or destabilising influences. ❑

Reviving ancient era of prosperous farmers by corporatizationof farming sector

Dr. Rakesh Kumar Pandey
Associate Professor
Physics Department,
Kirori Mal College,
University of Delhi

Thanks to the book 'The World Economic: Historical Statistics' written by Angus Maddison and published by OECD (Organisation for Economic Co-operation and Development) in 2004, it is well established now that India used to dominate the world business before she had gone through series of foreign invasions since 700 AD. We used to contribute almost one third in the world GDP. Owing to the business turnovers on such a scale, Indians were all individually independent and prosperous then. Be it metals, their quality or goods made of that;quality of cotton and silk or clothes made of these; education in physical sciences, medical or social sciences; the architectural skills or various other facets of fine arts including dances, sculptures and making incredible carvings, we were second to none. We had developed a sustainable life style in those days through living based on healthy farming and dairy products. We had evolved a style of community living that used to provide job security to all individuals of a community to give them the confidence to explore new areas and fields in the world. Farming was a well-respected profession since then, because it was considered to be associated with the ultimate sense of food and life security not only to self but to the society at large. In his book 'Indika', the Greek historian Megasthenes made his observation on the Indian farmers of 3-400 BC as:

"…… the farmers, who are the most numerous of Indians; they have no weapons and no concern in warfare, but they till the land and pay the taxes to the kings and the self-governing cities; and if there is internal war among the Indians, it is not lawful for them to touch these land workers, nor even to devastate the land itself; but while some are making war and killing each other as opportunity may serve, others close by are peacefully ploughing or picking fruits or pruning or harvesting."

These high norms went to toss when we were subjected to foreign invasions during the medieval period. Wars were fought without norms during medieval period. The medieval invaders cared little for humanity of those who were defeated. They spared neither the warriors nor the normal citizens, and farmers were

no exception. Farmers were burdened with taxes as the rulers used to suck them financially dry to support their luxurious life styles after their win. Share in the world GDP still remained as high as one fourth of the world GDP but the financial imbalance grew in the society. Some communities were favored as compared to others on some pretext or the other during this period. Due to such policies, class discrimination and community differences grew resulting in the formation of oppressors and oppressed classes. While the medieval period made the farmers financially weak and they were forced to live in destitution, the British policies later hit themeven harder. Farmers till that time used to be clear owners of their lands and the British company faced difficulties in acquiring their lands even by force. They then passed the infamous land Act of 1829 only to get the power of acquiring land of any unwilling farmer. The British had to bring this Act since the farmers in India used to be the real landowners in those times and the state had no power or provision to acquire their lands on any pretext.Cotton and indigo farming, that was the main reason of the prosperity of farmers in those times, were forced to almost shut down due to the policies of Britishers adversely impacting them. Once prosperous farmers of one ofthe most fertile lands belonging to the undivided Bengal were forced to face one of the worst known famines of the world in 1943. And thus, farmers became poor and helpless after India was ruled by those who were never concerned for the wellbeing of either India or her citizens.

In fact, the real growth in India will be realized only when we would begin considering industrialists as farmers. And if policies favoring the farming sector continue this way, the nation may well go on to produce their own versions of several Adanis and Ambanis in the farming sector itself. And that India will be the true leader of the world.

Unfortunately, the sufferings of farmers continued even after India became independent in 1947. This happened because the policy of the successive governments focused more on the infrastructural development of cities. This was achieved to some extent but at a huge cost of neglecting the issues related to farming, farmers and villages. For years the agriculture sector that contributes to 18 percent in the India's GDP, gets a budget allocation of less than 2% despite the fact that agricultural income still supportsmore than sixty percent of the Indian population. Ironically, while inflation grew manifold in these seventy years, income of farmers was hardly made to match that growth. In the era of industrialization, urbanization and infrastructural development the rural India was left behind.

The time has come to realize the blunder of neglecting and ignoring the agriculture sector in our policies. In fact, farming needs to be developed as a profession with adequate assurance of a reasonably well life style. For this to happen, food needs to be sold as products of agricultural industry. Agriculture needs to be corporatized. The government needs to invest on infrastructural development of rural India to make the rural life as easy and as systematic as it is expected in any urbanized area. Farmers need to revive their old ancient glory to make synonym to prosperity. The present government is openly aiming to become the nation having third highest GDP in the world in the next five years and this can't be achieved without taking farmers along on the path of growth and prosperity. The nation having majority of her inhabitants, dependent on the farming income, can hardly afford to grow without farmers. The dairy movement resulting in the Amul products of international standards, the MDH masala brand and Lijjat Papad have already shown the possibility of employment and prosperity in this field. It is encouraging to notice that in a span of just 5-6 years the expenditure on agriculture has been increased to almost three times (see the figure). In fact, the real growth in India will be realized only when we would begin considering farmers as industrialists. And if policies favoring the farming sector continue this way, the nation may well go on to produce their own versions of several Adanis and Ambanis in the farming sector itself. And that India will be the true leader of the world.❑

Evolving Agriculture – the Lifeline of a Nation

Dr. Geeta Bhatt
Director, Non-Collegiate Women's Education Board, University of Delhi

Agriculture is the lifeline of a nation.Our scriptures elaborate how our ancestors considered farming to be the best work to be undertaken. In Yejurveda-अन्नानांपतयेनम:क्षेत्राणांपतयेनम: (16.18) says that agriculture is the optimal work to be undertaken followed by business and employment under someone. During the British rule, Indian farming went through a shift in cultivation, moved away from catering for home consumption to crops like raw jute, cotton, oil seeds, indigo, opium meant to serve foreign markets. 'The Economic History of India' published by Ministry of Information and Broadcasting tells that the value of Indian Exports is estimated to have risen more than five hundred percent from 1859–60 to 1906–1907.

However, the benefits of exports were reaped by the British and the traders but did not benefit the farmers. Many agriculture economists consider the shift in crops and exports during the British rule as the contributing factor to the famine in India. In between 1876-77, during the most severe famines, exports continued to grow. K. C. Ghosh writes in'Famines in Bengal, 1770–1943' that British India around 1880 had produced a surplus of 5 million tons of food grains which was available for storage, export, or luxury consumption.

Post -independence, India's first five-year plan (1951-1956) had a share of 15.1 per cent, while the industries and minerals had a share of 6.3 per cent.W. David Hopper, President of International Development Research Centre estimated that in the First five-year Plan period, the food output grew by over seven percent per annum and this led to a confidence that the state will not face economic challenges due to agriculture produce.The Second Five Year Plan allocated 11.8 per cent to agriculture and 14.4 per cent to industries and minerals. It was during this period that reservation about the food economy became more prominent. India had to sign Public Law 480 agreements with United states to get food aid. The shipments carrying wheat started reaching India which gave the phrase 'ship to mouth' in economy,and for almost 20 years, we remained a food importing country.The short-term interest serving both sides - to stabilize food prices in India and managing of grain surplus of US, further delayed substantial efforts towards improving agriculture output, resulting in prices of wheat falling in the late 50's and early 60's. Policy paralysis and poor vision created a shortfall in investments in agriculture, especially in Northwest India. In1955, Jawaharlal Nehru said from the rampart of Red Fort on Independence Day 'It is very humiliating for any country to import food. So, everything else can wait but not agriculture.'

Nevertheless, the growth in agricultural production dropped from three percent per year between 1955 and 1960 to two percent between 1960 and 1965; grain production growth fell from2.9 percent to less than l.6 percent in the same period. This was a time when more than 80% of the population was living in rural areas and was dependent on agriculture for their livelihood.

The Nagpur resolution of

Congress Party in 1959-60, adopted by its Working Committee, called for a cooperative structure for the Indian rural economy. Many agricultural economists viewed the resolution more as a political pronouncement which proposed for land ceilings that outlined the maximum amount of land that a farmer can own and service cooperatives to provide for farmers. The landless farmers were also not welcoming the proposal as this still didnot give them land owner's rights.

It was Dr. M.S. Swaminathan of Indian Agricultural Research Institute who in 1962 took initiative to bring strains of the dwarf wheat varieties from Mexico which had been developed by Dr. Norman Borlaug. The field trials of these strains produced more than double, sometimes triple experimental yield. Plant breeders of Madras made available a new variety of rice which was obtained from the International Rice Research Institute which gave high yield. This was the advent of the Green Revolution and in 1967, the first harvest reaped was a record three million tonnes higher. The strategy to use modern farm practices, high yielding varieties of crops, multiple cropping, irrigation facility led to self-sufficiency in food grains. Many researchers opine that this definitely took India out of the vicious dependency on others for 'food on the plate' with extensive research, input supply, price support but agrarian reforms took a backseat.

The next phase of agriculture in early eighties saw diversification which resulted in growth of non-grain foods like milk, fishery, poultry, vegetables, fruits. This witnessed an increase in the agriculture GDP, increase in subsidies but at the same time state spending on agriculture infrastructure development started showing adecline. In the early nineties, economic liberalisation was implemented by the government to give boost to the economy but largely left agriculture sector. In 1995, formation of World Trade organisation and new international trade accord, opened the domestic market and also posed new challenges to the agro-policy makers. With cheaper imports, the burden of keeping food inflation under control was passed on to farmers. United Nations Conference on Trade and Development (UNTAD) study reported that farm gate prices remained static for a period of 20 years, between 1990 and 2010.

The farmer has been bearing the brunt of economic growth of various sectors. National Crime Records Bureau (NCRB) data shows that over a quarter of a million farmers' committed suicides between 1995 and 2010 with state of Maharashtra at the top. The suicide figure was 42,480 in the year 2019. With 85% of the farmers having land holding of less than three acres, exodus from rural to urban areas and suicides of the farmers, point towards the urgency to bring fundamental agricultural policy challenges in order to arrest the increasing miseries of the farmers in the last 7 decades.

In the year 2000, the government for the first time came out with a national agriculture policy which aimed at a growth rate in excess of 4% per annum in the agriculture sector,growth based on conservation of soil, water and biodiversity and was demand driven,which catered to the small markets,to equip domestic markets facing challenges arising from economic liberalisation and globalisation. Indian Council of Food and Agriculture reported that the growth in agriculture GDP which stood at 4.7 per cent per annum during the 8th Plan (1992-97) progressively declined to 2.1 per cent per annum during the 7th Plan (1997-02) and 1.8 per cent per annum during 10th Plan (2002-07). Growth rate in agricultural employment in rural areas was 1.38 per cent during 1983 to 1993-94 which declined to 0.12 per cent during the post reform period of 1993-94 to 2005-06.

The farmer has been bearing the brunt of economic growth of various sectors. National Crime Records Bureau (NCRB) data shows that over a quarter of a million farmers' committed suicides between 1995 and 2010 with state of Maharashtra at the top. The suicide figure was 42,480 in the year 2019. With 85% of the farmers having land holding of less than three acres, exodus from rural to urban areas and suicides of the farmers, point towards the urgency to bring fundamental agricultural policy challenges in order to arrest the increasing miseries of the farmers in the last 7 decades. By resolving to increase farm income by combating pre- and post-harvest challenges is the only way forward to bring respect, respite and well being for farmers and agriculture.❑

Migration of tribal people :

Strategies for its Prevention in South Gujarat

Prof. Vipul J Somani

Mahatma Gandhi Department of Rural Studies, Veer Narmad South Gujarat Univevrsity, Surat

Migration of poor from rural areas to the urban and semi-urban parts of the district and states is a common phenomenon. A lot of work has been and is being carried out by State and Central governments in the form of providing infrastructure and works in the rural areas of Gujarat and entire country. Despite such efforts migration continues. The migrants include farmers and farm labours both. The farmers are land owner and cultivate their land during monsoon only. The farm labours work in the fields of farmers during monsoon and for rest of the time they search jobs. Successful implementation of Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act failed to prevent migration in many parts of the country. This paper deals with the causes of migration in the tribal villages of South Gujarat and discusses the strategies for its prevention on a permanent basis.

Migration is a painful phenomenon for the family especially when it is made in distress. Usually the young male members of the family migrate to the nearby villages or towns in search of work to earn their livelihood. Sometimes the young couples with children go out in search of work leaving their parents, cattle and land behind. The ones that are left at home struggle for their survival in absence of the care takers. The migrants also suffer a lot when they go to work in nearby or fara way places. The suffering starts from place to live, search for job and uncertainty of availability of jobs. If the migrants have brought family members including wife and child/children the suffering is more. Many a time they live in below human dignity conditions. The migrants include both farmers and farm labours. It is said that agriculture is the backbone of Indian economy and a vast majority of population lives in villages that are dependent directly or indirectly on agriculture. However, in recent years the share of agriculture in the economy has been reducing and so is the population dependent on it. In India more than half of the cultivable land is rain fed and the farmers are solely dependent on rain for their yield. The 48.8 % of land that is under irrigation also is incapable of year

round cultivation. Most of the land under irrigation has underground water sources that are dependent on rainfall for its recharge. Such land can be tilled for cultivating two crops instead of year round agricultural practices.

In the hilly and undulating areas of the country where a large population of tribals lives the area under irrigation is scanty and hence a large area is dependent on rain. In these areas the quality of land is not suitable of large scale cultivation but is sufficient to provide the peasants with food security. A number of rivers originate from such hilly areas irrigating land and providing a year round source of drinking water for people and cattle. However, due to indiscriminate cutting of forests the hilly areas have become barren. It has resulted in reduced precipitation and also percolation. The rain water is not retained by the land and runs away quickly with a lot of surface soil silting the rivers and other water bodies. Silting hampers water percolation making it difficult to recharge the underground aquifers. Such situations results in shortage of dirking water in the forest areas that receives highest rainfall. For example Kaparada taluka of Valsad district of Gujarat is a tribal dominant area receiving highest rainfall in the district faces shortage of drinking water for five months of a year. The Dang is another district having dense forest and almost entire population in tribal. This district also receives a lot of rains but after December there is water shortage. In Kaparada taluka and the Dang district the majorities of farmers practice rain fed agriculture and are free after the harvest of Kharif crops. The number of landless people in the forest dominant area

is very small.

From such areas a large number of people migrate to the adjoining villages and talukas as labour in industries or in sugar fields for three to five months. Some people commute between their place of work and many migrate with families. Some

Migration is a painful phenomenon for the family especially when it is made in distress. Usually the young male members of the family migrate to the nearby villages or towns in search of work to earn their livelihood. Sometimes the young couples with children go out in search of work leaving their parents, cattle and land behind. The ones that are left at home struggle for their survival in absence of the care takers.

researchers have reported that the cause of migration of tribal in the sugar fields is non-implementation of Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) by Government of Gujarat.

To verify the claim the Mahatma Gandhi Department of Rural Studies of Veer Narmad South Gujarat University, Surat had undertaken a project on preparation of plans for Sustainable Rural Development in 15 villages of the Dang during 2017-20. The study revealed that the earlier studies criticizing the government over non-implementation of MGNREGA were away from truth. Instead what we found that water is the only hurdle in the development of the region. As most of the people are dependent on agriculture, in the absence of industries, water plays a pivotal role in the tilling of land. Almost all the farmers depend on rain for their agricultural activities. Moreover, as the land is hilly and undulating, there is limitation on the selection of crops. Paddy is the sole crop along with few legumes grown mostly for self consumption. Providing them

with water harvesting structures constructed with people's participation is the only alternative for the survival and development of the tribals in these villages.

A second important aspect that we have come across during our field visits in the area is about increased expenditure on items that were earlier not known. Soaps (bathing and detergents), shampoos, purchasing of television, subscription of television, purchasing mobile, recharging of mobile, petrol for two wheelers, etc., require liquid cash and the residents of the area put a lot of pressure on the natural resources and migrate in search of work. To support their needs production and value addition of the biological resources available in the area can be thought of. A number of herbs growing in this area is diminishing due to over exploitation. Systematic plantation of medicinally important trees, shrubs and herbs in the degraded forest and collection, cleaning and processing of products from them locally can provide employment and also add value to these herbs.

To protect the tribal peasants from the natural calamities induced by climate change there is an urgent need for conservation of the local biodiversity of crops like paddy, ragi and certain legumes that are grown traditionally. During our field work we have collected more than 65 different ecotypes of paddy and ragi. We have learned that many varieties that were grown earlier are not grown and have disappeared because of introduction of new high yielding varieties. Conservation, improvement and promotion of such local varieties will help the farmers in long run.

It was also observed that less and less number of people now cultivated ragi, once staple food of tribals. As we know ragi has more iron, phosphorous and calcium than any other cereals. Availability of wheat and rice from public distribution network and considering eating of ragi as a notion of backwardness, people have stopped cultivating ragi. If its cultivation is promoted by the

government the problems of malnourishment among the women and children can be averted.

In addition to these, promotion of certain crops like turmeric, strawberry, grapes, cashew, mango, etc can boost the income of the farmers. The soil and climatic conditions of this area are suitable for these and other like crops. Provision of water, sufficient training to raise crops and value addition have a potential for sustainable development of the hilly tribal dominated population of south Gujarat.

The potential of the area can be realized easily, unlike in past, as there is increase in education, infrastructure, availability of agricultural finance and online and offline training.

The above strategy will not only ensure food security and give money in the hands of the farmers and stop their migration, but will also help landless farm labours with increased opportunities for working in fields and outside the fields in value addition centers. The opportunities of work available under MGNREGA can be further streamlined and concentrated efforts can be made for conservation of soil and water. Detailed implementable reports on every village for their sustainable development can be prepared with the help of experts and active involvement of villagers. Such reports will suggest the available natural resources in the village and how best it can be managed for sustainable development.

Conclusion

The tribal area has potentials that can lead to sustainable development and provide opportunities of livelihood at local level. Area specific work on conservation of soil and water and other natural resources can provide a road for development. With increased infrastructure and education other opportunities can be further created by introducing high value crops suitable to a particular area. Conservation and promotion of crop biodiversity will be helpful in mitigating and fighting impacts of climate change on agriculture. Skillful planning for every village for conservation of natural resources and its timely implementation under MGNREGA will not only provide gainful employment to the landless labours but also help farmers in increasing their crop productivity.❑

भारतीय वांग्मय में शाश्वत जीवन मूल्य एवं व्यक्ति निर्माण

डॉ. अनिल कुमार दाधीच

सह आचार्य (अंग्रेजी),
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, केकडी,
अजमेर (राज.)

यह विषय मूल रूप से दो भागों में विभक्त है, जिसमें हम पहले चर्चा करेंगे शाश्वत जीवन मूल्यों की, फिर उन शाश्वत जीवन मूल्यों के योग से व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया की। शाश्वत का अर्थ है चिरंतन, अनंत, जो कभी खत्म न हो। कहा जा सकता है कि ऐसे मूल्य अथवा सिद्धांत जो जीवन की श्रेष्ठता के लिए अपरिहार्य हों, जिनसे जीवन सार्थक बन सके और जिन्हें हम पीढ़ी दर पीढ़ी श्रेष्ठ जीवन की कुंजी मानकर अपनी आगत पीढ़ी को संस्कार स्वरूप में दे सकें और अंततः जो हमारे राष्ट्र की पहचान बन सके।

हमारे ऋषि-मुनियों, दृष्टाओं, चिंतकों व कवियों ने अगणित वर्षों से इस विषय पर चिंतन जारी रखा एवं हमारे वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति, उपनिषद, धार्मिक ग्रंथ, महाकाव्य एवं अन्यान्य भारतीय वांग्मय में मानव सभ्यता को श्रेष्ठता की ओर ले जाने वाले बेहतर, अर्थपूर्ण और सुखद जीवन जीने की कुंजीस्वरूप आदर्श मूल्यों का प्रतिपादन किया है। इस शाश्वत चिंतन से उपजा नवनीत ही हमारे शाश्वत जीवन मूल्य हैं, जिनको जीते हुए हम 'मोक्ष' की अवधारणा के लिए तैयार होते हैं।

यदि हिन्दू संस्कृति का प्राणतत्त्व देखना चाहें तो निम्न श्लोक उसे ठीक ठीक अनुप्राणित करता है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यंतु,
मा कश्चित दुःखभाग्भवेत।

कैसी सुंदर 'शुभ' की कामना है- सभी सुखी हों, सभी नीरोग (स्वस्थ) हों, सभी भद्र (शुभ) देखें और कोई भी 'दुख' का भागी न बने! जब दुःख ही नहीं होगा, तो सुख... चिरंतन 'सुख' की स्थिति की कल्पना हुई और हम सामान्य जीवन में देखते हैं 'सुख' प्रत्येक प्राणी का अभीष्ट है। उसी को प्राप्त करने के लिए समस्त प्राणी प्रयत्नशील रहते हैं और उद्यम करते हैं। किंतु महाभारत के 'शांति पर्व' में एक श्लोक है-

आहारनिद्राभयमैथुनं च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेसामधिको विशेषः,
धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः।।

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन, यह चार वृत्तियाँ मनुष्य और पशु दोनों में समान होती है। मनुष्य और पशु में विभेद विशेष रूप से 'धर्म' ही करता है। धर्महीन व्यक्ति पशु के समान होता है। ऐसे में प्रश्न उपस्थित होता है कि 'धर्म क्या है?' तो कहा गया है- 'यः धार्यते, स धर्मः' अर्थात् जो धारण करता है, वह धर्म है यथा- जल का धर्म है 'नम करना या बहना', अग्नि का धर्म है 'जलना या जलाना', वायु का धर्म है 'बहना, जीवन देना'। अगर मनुष्य के धर्म पर विचार करें तो वह है - उसके मानवीय 'जीवन मूल्य अथवा शाश्वत जीवन मूल्य'। हम चर्चा कर रहे थे कि मनुष्य के जीवन का केंद्र है- सुख! किंतु आहार, निद्रा, भय मुक्ति तथा इंद्रिय सुख, जो पशुओं में भी समान है, तो फिर? वस्तुतः मनुष्य में बौद्धिक उत्कंठा भी तो है; वह स्वभाव से जिज्ञासु है और तार्किक भी। ऐसे में जब वह सुख का तर्क करता है तो वह 'क्षणिक भौतिक अथवा इंद्रिय सुख' मात्र से सदा संतुष्ट नहीं होता। वह सुख भी 'चिरंतन अथवा शाश्वत' चाहता है। उसे यह सुख भी 'मन, बुद्धि व देह' से ऊपर का चाहिए, क्योंकि जब मन, बुद्धि और देह शाश्वत नहीं, तो उससे मिलने वाला सुख 'शाश्वत' कैसे होगा?

जब व्यक्तिगत सुख की कामना होती है तो यह तय है कि उसमें प्रतिस्पर्धा होगी, दूसरों की तुलना में अधिक की कामना होगी। सभी दूसरों से अधिक दैहिक या बौद्धिक सुख चाहेंगे और पाने की यह स्पर्धा 'कलह और मानसिक संताप' का कारण बन जाएगी। ऐसे में सच्चा सुख किसे मिल पाएगा?

इसलिए जीवन में 'सुख' के तत्त्व को हटाए बिना हमारे मनीषियों ने जो मूल्य अपने ग्रंथों में, कथाओं, आख्यानों और उपदेशों में अथवा काव्य के माध्यम से प्रतिपादित व संवर्धित किए, वह हमारे शाश्वत जीवन मूल्य हुए।

जब 'आत्मवत सर्वभूतेषु, य: पश्यति स पंडित' कहा गया तो स्पष्ट था कि दूसरों के साथ आप वही व्यवहार कीजिए जो आपको स्वयं के लिए पसंद है। जब 'परद्रव्येषु लोष्ठवत' कहा गया तो 'अस्तेय' की अवधारणा दी गई। 'कृण्वंतो विश्वमार्यम्' कहकर यह कामना की गई कि सारा विश्व श्रेष्ठ, सभ्य और सुसंस्कृत हो। 'सत्यम शिवम सुंदरम' कहकर सत्य को ही कल्याणकारी एवं शुभ माना गया। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति' कहकर 'अनेकता में एकता, सर्वग्राह्यता व सभी की आस्था को समान सम्मान' के मूल्यों को स्वीकार किया। स्वामी श्री रामसुखदास महाराज 'श्रीमदभगवद गीता' की अपनी टीका के प्रारंभ में ही लिखते हैं – 'यह हिंदू संस्कृति की विलक्षणता है कि इसमें प्रत्येक कार्य अपने कल्याण का उद्देश्य सामने रखकर ही करने की प्रेरणा की गई है। इसीलिए युद्ध जैसा घोर कर्म भी 'धर्मक्षेत्र व कर्मक्षेत्र' कहा गया, जिसमें युद्ध में मरने वाले का भी कल्याण हो जाए।

वह जातक कथा जिसमें भगवान बुद्ध उस युवती को, जो अपने पुत्र का जीवनदान माँगने आई है, ऐसे घर से एक मुट्ठी चावल लाने को कहते हैं जिसमें मृत्यु कभी नहीं हुई हो, वह सहज ही 'मृत्यु की अवश्यंभाविता' को स्वीकार करने की सीख है। गीता के दूसरे अध्याय का 27 वाँ श्लोक है–

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:,
ध्रुवं जन्ममृत्यस्य च।
तस्मात परिहार्येर्थे,
न त्वं शोचितुमर्हसि।।

अर्थात् जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। यह जन्म-मरण चक्र अपरिहार्य है अर्थात् इसका किसी भी प्रकार से प्रतिकार नहीं किया जा सकता। अत: कृष्ण कहते हैं कि इस अपरिहार्य विषय के निमित्त शोक करना उचित नहीं।

शास्त्रों में कहा गया है – 'अमृतस्य पुत्रा: वयम' (अमृत के पुत्र हैं हम!) अर्थात् हम अविनाशी ईश्वर की संतान हैं, ईश्वर ही तो अमृत हैं, अमर हैं। वह दिव्यता हम सभी में है, बस अव्यक्त रहती है। हम जन्म जन्मांतरों में इस अव्यक्त दिव्यता को परिष्कृत करते हैं, क्योंकि यह परिष्कार हमारी बौद्धिक क्षमता के अनुरूप होता है। चूंकि 'सुख' जीवन में महत्त्वपूर्ण चुंबकीय तत्त्व है, हम सुख पाने के अनेक मार्गों से होकर गुजरते हैं। उसकी क्षणभंगुर प्रकृति को समझने में जीवन-दर-जीवन भटकते हैं, और हर बार कुछ परिष्कार अवश्य होता है। यह भी सत्य ही है कि अंतत: यह अनवरत परिष्कार आत्मा का वह अमृत तत्त्व 'सत चित आनंद' लाता ही है क्योंकि 'सुख' की चरम परिणति वहीं तो है। स्वार्थपूर्ण एवं प्रतिस्पर्धा आधारित सुख की प्रकृति का संकुचित अर्थ ठीक से समझ आने पर ही व्यक्ति 'चरम लक्ष्य' की ओर अग्रसर होता है। अंतत: ज्ञान से ही परमानंद संभव है।

हमारे प्राचीन मनीषियों ने जीवन को चार आश्रमों में बाँटा था– ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम। ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य बेहतर जीवन जीने के लिए गुरुकुल में रहते हुए

'यह हिंदू संस्कृति की विलक्षणता है कि इसमें प्रत्येक कार्य अपने कल्याण का उद्देश्य सामने रखकर ही करने की प्रेरणा की गई है। इसीलिए युद्ध जैसा घोर कर्म भी 'धर्मक्षेत्र व कर्मक्षेत्र' कहा गया, जिसमें युद्ध में मरने वाले का भी कल्याण हो जाए।

ज्ञानार्जन करता था, शरीर को शक्तिशाली बनाता था व जिन शाश्वत जीवनमूल्यों की हम बात कर रहे हैं, उनका गुरु के सान्निध्य में अभ्यास करता था। गृहस्थ आश्रम में कुटुंब निर्वहन का कर्तव्य निभाता था। यहाँ 'पुरुषार्थ चतुष्टय' की बात करना समीचीन होगा। हमारे शास्त्रों में 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' को पुरुषार्थ चतुष्टय कहा गया है। धर्म पहला सोपान है जो हमें सीखना होता है। धर्म जीवनमूल्यों को धारण करना है और धर्म के बिना जीवन अव्यवस्थित और अराजक हो जाएगा। इसीलिए इसे पुरुषार्थ चतुष्टय में प्रथम स्थान पर रखा गया है।

फिर स्थान आता है 'अर्थ' का! 'अर्थ' मतलब धन, भौतिक संपदा। धर्म द्वारा भौतिक संपदा अर्जित करना। अनुभव कहता है सच्चा सुख तभी संभव है जब धर्म का आचरण करते हुए अर्थ अर्जित किया जाए। कुटुंब के भरण–पोषण का स्रोत है अर्थ! तत्पश्चात स्थान है 'काम' का! काम को सामान्य इंद्रिय सुख तक संकुचित करना ठीक नहीं होगा। काम व्यक्ति की कामनाओं का विस्तार माँगता है। यह राजसी गुण है–व्यक्ति की महत्त्वाकाँक्षाओं का क्षितिज! भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही राजा एवं श्रेष्ठिवर्ग जनहित में विद्यालय, जलाशय, धर्मशालाएँ, औषधालय इत्यादि धर्मार्थ बनवाते थे, क्योंकि वे जानते थे कि धन की शास्त्रोक्त तीन गतियाँ हैं– दान,भोग और नाश! 'दान' को अर्थ के व्यय की सर्वोत्तम गति मानी गई है। यह धर्म में आदर्श कामनाओं की पूर्ति का माध्यम था। भगवद गीता के पंचम अध्याय में श्लोक है–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं
त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन
पद्मपत्रमिवाम्भसा।।(5/10)

अर्थात् जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा को अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करते हैं, वे पुरुष जल में कमल का पत्ता जैसे गीला नहीं होता वैसे ही, पाप से लिप्त नहीं होते।

इस प्रकार 'आसक्तिरहित कर्म' ही पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतिम सोपान 'मोक्ष' तक ले जाते हैं। मोक्ष क्या है? दो अर्थ निकाले जा सकते हैं– पहला, गति का रुक जाना; दूसरा, स्वयं प्रकाश हो जाना। भगवान बुद्ध ने इसे ही 'अप्पो दीपो भव' कहा। मोक्ष चिरशांति की अथवा अनंत प्रकाश की अवस्था है। यहाँ ज्ञान को प्रकाश कहा जा सकता है, जो निर्लिप्त भाव से कर्म के अभ्यास से संभव है।

यह पुरुषार्थ चतुष्टय का योग ही वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम के जीवन काल की सफलता की कुंजी है। वानप्रस्थ काल में व्यक्ति कुटुंब के सीमित दायरे से निकल समाज व राष्ट्र के लिए अपने सामर्थ्य अनुसार योग करता है तथा संन्यास आश्रम में अथवा जीवन काल की संध्या में संचित ज्ञान को समाज कल्याण हेतु साझा करता है।

इस प्रकार हमने देखा कि हम जीवनपर्यंत शाश्वत जीवनमूल्यों को सीखते हुए उनका अभ्यास करते रहते हैं। उनका निरंतर अभ्यास और आचरण में ढालने के पश्चात ही हम चिरंतन आनंद के लक्ष्य की कल्पना कर सकते हैं। अब हम विषय के दूसरे पहलू पर आते हैं– व्यक्ति निर्माण!

सोचिए, अहिंसा के जीवन मूल्य को गाँधी जी ने किस कदर निभाया। जब पूरा राष्ट्र आंदोलित था, तब हिंसा की एक क्रूर घटना ने उन्हें इतना द्रवित कर दिया कि राष्ट्रव्यापी सफल आंदोलन को ही वापस ले लिया। यहाँ 'मैमने की टांग' हिंसा का प्रतीक है, किंतु 'मिट्टी की पुल्टिस' अहिंसक मार्ग का इलाज है। इसीलिए गाँधी जी महात्मा कहलाए। शाश्वत जीवन मूल्यों को जीना ही 'व्यक्ति निर्माण' का विशुद्ध माध्यम है।

हमारा सामान्य जीवन में अनुभव रहता होगा कि जब हम एक बहुत पढ़े-लिखे, विद्वान व्यक्ति के संपर्क में आते हैं तो बहुत संभव है हम उसके बुद्धि विलास से एकबारगी तो प्रभावित हो जाएँ, किंतु यदि यह व्यक्ति कोरे किताबी ज्ञान वाले हैं और उन्होंने अपने ज्ञान को आचरण व व्यवहार में नहीं उतारा है, तो उनके व्यक्तित्व की वे तरंगे हम तक नहीं पहुँच पाती जो एक कम पढ़े लिखे, किंतु कर्मशील व्यक्ति के संपर्क में आने से पहुँचती है। ऐसे व्यक्ति से हम सहज ही जुड़ाव भी महसूस करते हैं और उनका प्रभाव (Impact) भी हम पर आता है। कई बार कहा जाता है कि व्यक्ति को जाँचना हो तो मात्र उसके बड़े कार्यों से नहीं जानना चाहिए क्योंकि कई बार सामान्य अथवा मूर्ख व्यक्ति भी अवसर विशेष पर बहादुरी दिखाते नजर आते हैं। असल में, इस हेतु व्यक्ति के दैनंदिन जीवन के सामान्य व्यवहार में किये जाने वाले साधारण कार्यों को देखना चाहिए क्योंकि जो सब अवस्थाओं में समान रूप से उदात्त कर्मशील बना रहता है, वही महान है। रिचर्ड एटनबरो ने महात्मा गाँधी के जीवन पर एक बड़ी सार्थक फिल्म बनाई– 'गांधी'। फिल्म में एक दृश्य है, जिसमें 'चौरी चौरा कांड' के बाद गांधी जी ने अत्यंत सफल 'असहयोग आंदोलन' को वापस ले लिया। तब कांग्रेसी नेता यथा नेहरू, पटेल आदि गाँधी जी से पुनर्विचार हेतु आग्रह करते हैं। गाँधीजी एक दर्द भरी मुस्कुराहट के साथ अपनी बकरी के बच्चे को गोद में उठाये हुए, जाते हुए जवाब देते हैं – 'मेरी बकरी के बच्चे की टांग टूट गई है, इसे मिट्टी की

पुल्टिस बाँधनी है।' सोचिए, अहिंसा के जीवन मूल्य को गाँधी जी ने किस कदर निभाया। जब पूरा राष्ट्र आंदोलित था, तब हिंसा की एक क्रूर घटना ने उन्हें इतना द्रवित कर दिया कि राष्ट्रव्यापी सफल आंदोलन को ही वापस ले लिया। यहाँ 'मैमने की टांग' हिंसा का प्रतीक है, किंतु 'मिट्टी की पुल्टिस' अहिंसक मार्ग का इलाज है। इसीलिए गाँधी जी महात्मा कहलाए। शाश्वत जीवन मूल्यों को जीना ही 'व्यक्ति निर्माण' का विशुद्ध माध्यम है।

भगवद गीता में कहा गया है-

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः
सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः
स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ (2/56)

अर्थात् दुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो निस्पृह रहता है; जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो चुके हों, ऐसा मनुष्य स्थिर बुद्धि कहलाता है।

हमारा मस्तिष्क निरंतर कुछ न कुछ सोचता रहता है और प्रत्येक विचार हमारे चित्त पर एक संस्कार छोड़ देता है। भगवत गीता में विषयों के चिंतन से लेकर अतृप्त कामनाओं के कारण उत्पन्न 'क्रोध' के प्रभाव का बड़ा गूढ़ मनोवैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः
संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ (2/62)
क्रोधाद्
भवति सम्मोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (2/63)

अर्थात् विषयों का चिंतन करते रहने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामनापूर्ति में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोध के कारण सम्मोह या अत्यंत मूढ़ता का भाव पैदा हो जाता है। सम्मोह से स्मृति में विभ्रम पैदा हो जाता है। स्मृतिभ्रंश होने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि अथवा विवेक समाप्त होने पर व्यक्ति अपनी स्थिति से गिर जाता है।

(भगवद्गीता 2/62-63)

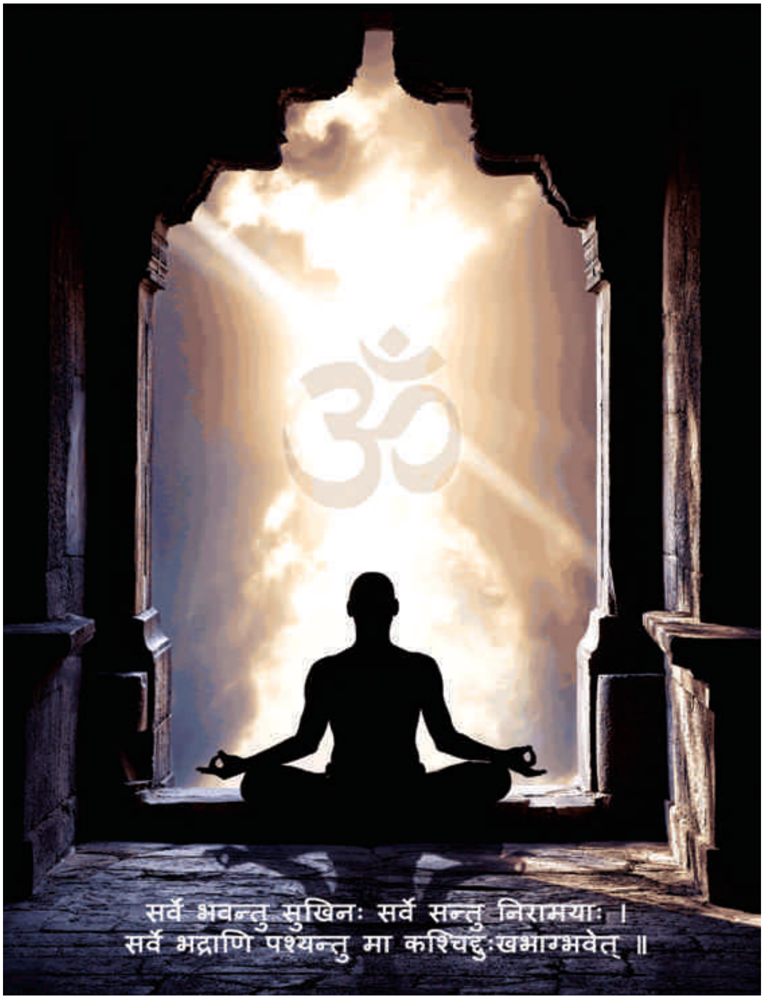

कहते हैं, आदत ही आपका दूसरा स्वभाव होती है (Your habits become your second nature) आदत क्या है? आदत हमारे पुनः पुनः आवृत्त किए जाने वाले कर्म ही तो हैं। जो भी हम जीवन में बार-बार दोहराते हैं, चाहे वह विचार हों या कर्म, वही हमारी आदत बन जाते हैं। तो हम कह सकते हैं कि हम आज जो कुछ भी हैं, वह हमारे अतीत जीवन के समस्त संस्कारों का प्रभाव है। दरअसल यही चरित्र निर्माण की प्रक्रिया है। इसलिए अगर आज हम अपने आप से संतुष्ट नहीं हैं, तो हमें बदलने के लिए सोच-समझ कर अपनी आदतें विकसित करनी होगी, उन्हें बदलना होगा और उनका अभ्यास बढ़ाना होगा,क्योंकि वही आगे जाकर आपके भविष्य का स्वभाव या चरित्र बन जायेगी।

अब अभ्यास क्या करना है? अभ्यास शाश्वत जीवन मूल्यों को अपने जीवन में उतारने का करना है! उन पर मनन करना, मंथन करना और उचित का अभ्यास बढ़ाना! तब निःसंदेह 'सत चित आनंद' दूर नहीं रहेगा। यकीन से कह सकते हैं कि हम बदलेंगे तो युग बदलेगा। ❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : अध्यापक शिक्षा के लिए नई दिशा

डॉ.जसपाल सिंह वरवाल
जम्मू विश्वविद्यालय

भारत में शिक्षक-शिक्षा नीति को समय के हिसाब से निरूपित किया गया है और यह शिक्षा समितियों/आयोगों की विभिन्न रिपोर्टों में निहित सिफारिशों पर आधारित है, जिनमें से महत्त्वपूर्ण है। कोठारी आयोग (1966), चट्टोपाध्याय समिति (1985), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई. 1986/92), आचार्य राममूर्ति समिति (1990), यशपाल समिति (1993) एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचा (एन.सी.एफ., 2005)। नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार (आर टी ई) अधिनियम, 2009, जो 1 अप्रेल, 2010 से लागू हुआ, का देश में शिक्षक-शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण निहितार्थ है। 1973 के पूर्व राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की भूमिका अध्यापक शिक्षा से संबंधित सभी विषयों पर केंद्रीय और राज्य सरकारों के लिए एक सलाहकार निकाय के रूप में थी। परिषद का सचिवालय राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, (एनसीईआरटी) के अध्यापक शिक्षा विभाग में स्थित था। शैक्षणिक क्षेत्र में अपने प्रशंसनीय कार्य के बावजूद परिषद, अध्यापक शिक्षा में मानकों को बनाये रखने तथा घटिया अध्यापक शिक्षा संस्थानों की बढ़ोतरी को रोकने के अपने अनिवार्य विनियामक कार्य नहीं कर सकी थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई.) 1986 और उसके अधीन कार्य योजना में अध्यापक शिक्षा प्रणाली को सर्वथा दुरुस्त करने के लिए पहले उपाय के रूप में संविधिक दर्जे और अपेक्षित संसाधनों से युक्त राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की कल्पना की गई थी।

एक साविधिक निकाय के रूप में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिनियम 1993 के अधीन राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद 17 अगस्त, 1995 से अस्तित्व में आई। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद का मूल उद्देश्य समूचे भारत में अध्यापक शिक्षा प्रणाली का नियोजित और समन्वित विकास करना, अध्यापक शिक्षा प्रणाली में मानदंडों और मानकों का विनियमन तथा उन्हें समुचित रूप से बनाये रखना और तत्सम्बन्धी विषय हैं। सेवा पूर्व प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी. ई.), जो केन्द्र सरकार का सांविधिक निकाय है, देश में शिक्षक शिक्षा के नियोजित और समन्वित विकास का जिम्मेदार है। एन.सी.टी.ई. विभिन्न शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों के मानक एवं मानदंड, शिक्षक-शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यताएँ, विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए छात्र-अध्यापकों के प्रवेश के लिए पाठ्यक्रम एवं घटक तथा अवधि एवं न्यूनतम योग्यता निर्धारित करती है। यह ऐसे पाठ्यक्रम शुरू करने की इच्छुक संस्थाओं (सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त और स्व-वित्तपोषित) को मान्यता भी प्रदान करता है और उनके मानदंड और गुणवत्ता विनियमित करने और उन पर निगरानी के निमित्त व्यवस्था है।

अध्यापक शिक्षा में गुणवत्ता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिलक्षित बहुत से बिंदु विचारणीय है। यह नीति सर्वसम्पन्न, कौशल, बहु विषयक दृष्टिकोण और ज्ञान देने वाली नई पीढ़ी के शिक्षकों की एक टीम के निर्माण की कल्पना लिए हुए हैं। अच्छे अध्यापकों के

बनने में अध्यापक शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है यह सर्वविदित है। वर्तमान में अध्यापक शिक्षा में बहुत से दोष हैं जो यदा-कदा शोध कार्य से या निरीक्षण से अथवा शिकायतों से हमारे आते रहे हैं। साल 2012 में जस्टिस जे.एस. वर्मा आयोग ने भी पाया कि देश की अध्यापक शिक्षा रसातल में जा चुकी है। देश भर के सर्वे में पाया गया कि हमारे अध्यापक शिक्षा संस्थान गुणवत्ता से कोसों दूर जा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित इस आयोग ने स्पष्ट रूप से कहा कि अध्यापक शिक्षा के लगभग 10,000 संस्थान अध्यापक शिक्षा के प्रति लेशमात्र भी गंभीरता से प्रयास नहीं कर रहे हैं, बल्कि इस के स्थान पर ऊँचे दामों पर डिग्रियों को बेच रहे हैं। अब तक किए गए विनियामक प्रयास न तो सिस्टम में बड़े पैमाने पर व्याप्त भ्रष्टाचार को रोक नहीं पाए हैं, और न ही गुणवत्ता के लिए निर्धारित बुनियादी मानकों को ही लागू कर पाए हैं, बल्कि इन प्रयासों का इस क्षेत्र में उत्कृष्टता और नवाचार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस लिए इस क्षेत्र के पुनरुद्धार की बहुत आवश्यकता है जिससे कि गुणवत्ता के उच्चतर मानकों को निर्धारित किया जा सके और शिक्षक शिक्षा प्रणाली में अखंडता, विश्व स्तरीय, प्रभावित और उच्चतर गुणवत्ता को फिर से बहाल किया जा सके।

देश भर के विश्वविद्यालयों और एनसीटीई को मिलकर अध्यापक शिक्षा के सतत् प्रयासों की जरूरत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मानना है कि इस के लिए सभी बड़े बहु विषयक विश्वविद्यालयों के साथ साथ सभी सार्वजनिक विश्वविद्यालय और बड़े बहु विषयक महाविद्यालयों का लक्ष्य होना चाहिए कि वे अपने यहाँ ऐसे उत्कृष्ट शिक्षा विभागों की स्थापना और विकास करें जो कि शिक्षा में अत्याधुनिक अनुसंधानों को अंजाम देने के साथ ही साथ मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, समाज शास्त्र, तंत्रिका विज्ञान, भारतीय भाषाओं, कला, संगीत, इतिहास और साहित्य के साथ-साथ विज्ञान और गणित जैसे अन्य विशिष्ट विषयों से संबंधित विभागों के सहयोग से भविष्य के शिक्षकों को शिक्षित करने के लिए बीएड कार्यक्रम भी संचालित करें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मानना है कि अध्यापक शिक्षा में बेकार संस्थानों के खिलाफ जागरूक तो होना ही है साथ-साथ ऐसे संस्थानों को एक वर्ष का समय सुधार को दिए जाने के बाद, कठोर कार्यवाही करने के सुझाव भी दिए गए हैं

नई शिक्षा नीति 2020 इस बात पर बल देती है कि शिक्षा व्यवस्था में किस प्रकार बदलाव किए जाएँ ताकि शिक्षा, कौशल व रोजगार के मध्य बेहतर जुड़ाव हो सके तथा पूर्व की शिक्षा नीतियों में शिक्षा, कौशल व रोजगार के मध्य के उपेक्षित संबंध को प्रभावी ढँग से स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

जो बुनियादी शैक्षिक मानदंडों को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। इस शिक्षा नीति का सुझाव है कि वर्ष 2030 तक, केवल शैक्षिक रूप से सुदृढ़, बहु-विषयक और एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम ही कार्यान्वित होने चाहिए। अध्यापक शिक्षा में गिरावट साल 2000 के आस-पास होनी शुरू हुई जब देश भर में स्कूली अध्यापकों की माँग बहुत थी और शिक्षण संस्थान कम थे। तब बहुत से राज्यों की सरकारों ने नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन से मिलकर प्राइवेट क्षेत्र को विस्तार का मौका दिया जिससे कुछ ही वर्षों में नए प्रशिक्षित अध्यापकों की भीड़ तो बहुत थी परन्तु गुणवत्ता नदारत हो गई। बहुत से प्रदेशों में स्तर इस तरह से गिरा कि बीएड और इटीटी पास अभ्यर्थियों से अध्यापक योग्यता परीक्षा पास तक नहीं हुई। देश में केन्द्र व राज्य सरकारों को राइट टू एजुकेशन एक्ट (2009) के बाद से अध्यापक की नियुक्ति के लिए सीटीइटी या राज्य का टीइटी पास करना अनिवार्य बना दिया गया। इस परीक्षा के आने से देखा गया कि यह परीक्षा पास करना कितना कठिन हो गया इससे पूर्व भ्रष्ट तंत्र ने नए-नए संस्थान तो दिए लेकिन गुणवत्ता के पैमानों पर वह नीचे की ओर जाते रहे, इसके लिए नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन की कार्य प्रणाली तो जिम्मेदार है, ही साथ-साथ यूनिवर्सिटी भी जिम्मेदार है जिन्होंने शिक्षक शिक्षण संस्थानों पर निगरानी और नियमों को अनदेखा किया और यह बीमार संस्थान अब तक चलते रहे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुत से सुझाव हैं जिससे अध्यापक शिक्षा की गरिमा बहाल की जा सकती है। अब तक नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन और यूनिवर्सिटी प्रशासन को मॉनिटरिंग समूह बनाने को प्रेरित करेगी ताकि बीमार अध्यापक शिक्षण संस्थान बंद किये जा सकेंगे, जो भी शैक्षिक मापदंडों पर खरे नहीं रहेंगे। इस निरीक्षण समूह को अधिकार होगा कि वे ऐसे संस्थानों को बंद करने का कठोर निर्देश दे सकेंगे। ऐसे बीमार संस्थान साल 2030 तक बंद कर दिए जाएँगे। बीमार शिक्षा शिक्षण संस्थानों में अधिकतर ने इसे व्यापार बना रखा है। जस्टिस वर्मा कमीशन 2012 ने ठीक कहा था कि यह संस्थान डिग्री बेचने के कारखाने बन गए हैं इन संस्थानों में पाए गए दोष इस प्रकार हैं जैसे-नॉन अटेडिंग स्टूडेंट्स, नियमानुसार फैकल्टी न रखना, टीचिंग प्रेक्टिस न करवाना, परीक्षाओं में नकल, स्टूडेंट्स को लूटना (वर्दी के नाम से, फालतू का जुर्माना, होस्टल जबरदस्ती देना आदि) प्रेक्टिकल और इंटरनल फाइल्स बनाने में हेरा-फेरी, निरीक्षण टीमों को रिश्वत (जिसमें नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन अधिकारी से लेकर यूनिवर्सिटी के डीन और इन्स्पेक्शन्स टीम्स शामिल), किसी ओर के नाम से

किसी दूसरे स्टूडेंट्स से कार्य करवाना, डमी प्रिंसिपल, डमी टीचर, डमी स्टूडेंट्स, एक ही फैकल्टी कई–कई संस्थानों के रिकॉर्ड्स में होना, झूठे दस्तावेज़ का इस्तेमाल, एडमिशन काउन्सलिंग के नाम पर देश भर में एजेंट सिस्टम का बहुत बड़ा बाजार बनना/ जाल बनना, प्रमुख यूनिवर्सिटीज के नाम से देश भर प्रतिशिष्ठत अखबारों में इश्तिहार होने पर भी कोई ऐसे एजेंट्स पर कार्यवाही न होना और रेगुलेटरी बॉडीज का ठीक से कार्य न करना हर स्तर पर यह संस्थान अध्यापक शिक्षा को बीमार करते चले गए और नतीजा हमारे सामने हैं ऐसे अध्यापक कोर्स करवाने वाले संस्थान बड़ी मात्रा में जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और प. बंगाल आदि बताये गए हैं ऐसे बीमार बीएड कॉलेजों पर नकेल कसना जरूरी है।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद का गठन देश में शिक्षक शिक्षा के नियोजन एवं समन्वित विकास की प्राप्ति, शिक्षक शिक्षा प्रणाली के मानकों एवं मानदंडों के विनियमन और उपयुक्त अनुरक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 के अन्तर्गत किया गया था। पिछले दिनों में एनसीटीई ने अपने कार्यकरण में क्रमिक सुधार और शिक्षक शिक्षा प्रणाली में सुधार के विभिन्न उपाय किए हैं, ऑनलाइन आवेदन प्रस्तुत करने और शुल्क के ऑनलाइन भुगतान की सुविधा प्रदान करते हुए ई–अभिशासन प्रणाली की शुरूआत की गई है। मान्यता की प्रक्रिया कारगर बनाने के लिए एम.आई.एस. विकसित किया गया है; एन सी एफ, 2005 को ध्यान में रखते हुए शिक्षक शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचा तैयार किया गया है; दौरा दलों की पुनर्संरचना, शिक्षक शिक्षा संस्थानों की आवधिक निगरानी और एनसीटीई द्वारा निर्धारित मानकों एवं मानदंडों के अनुरूप जो संस्थाएँ नहीं हैं उनकी मान्यता समाप्त करने सहित विभिन्न गुणवत्ता नियंत्रण प्रणालियाँ तैयार की गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मुख्य अनुमोदन है कि 2030 तक बहु विषयक उच्चतर शिक्षण संस्थानों द्वारा प्रदान किया जाने वाला चार वर्षीय एकीकृत बीएड कार्यक्रम स्कूली शिक्षकों के लिए न्यूनतम डिग्री ही मान्य हो जाए, जिससे गुणवत्ता को बनाया जा सकेगा। 4 वर्षीय एकीकृत बीएड प्रदान करने वाला प्रत्येक उच्चतर शिक्षण संस्थान, किसी एक विषय विशेष में पहले से ही स्नातक की डिग्री हासिल कर चुके, ऐसे उत्कृष्ट विद्यार्थी जो आगे चलकर शिक्षण करना चाहता है, के लिए अपने कैंपस में 2 वर्षीय बीएड कार्यक्रम भी डिज़ाइन के सकेंगे। विशेष रूप से ऐसे उत्कृष्ट विद्यार्थी जिन्होंने किसी विशेष विषय में 4 वर्ष की स्नातक की डिग्री प्राप्त की होगी, के लिए 1 वर्षीय बीएड कार्यक्रम भी खुद डिज़ाइन करके ऑफर कर सकेंगे इन 4 वर्षीय, 2 वर्षीय और 1 वर्षीय बीएड कार्यक्रमों के लिए उत्कृष्ट उम्मीदवारों को आकर्षित करने के उद्देश्य से मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की स्थापना करने का भी उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति में रखा गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मानना हे कि सलाह समूह के लिए एक राष्ट्रीय मिशन की स्थापना की जाएगी, जिसमें वरिष्ठ और सेवानिवृत उत्कृष्ट संकाय सदस्य भी शामिल होंगे, जिनमें भारतीय भाषाओं में पढ़ाने की क्षमता है और जो विश्वविद्यालय/ कॉलेज शिक्षकों को लघु और दीर्घकालिक परामर्श/ व्यावसायिक सहायता प्रदान करने के लिए तैयार होंगे। शिक्षकों के ऑनलाइन प्रशिक्षण के लिए स्वयं/दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी प्लेटफार्म के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा, ताकि मानकीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रमों को कम समय के भीतर अधिक शिक्षकों को मुहैया कराया जा सके व्यवसाय में प्रवेश करने की वर्तमान में मिडिल स्कूलों के अध्यापकों के लिए डिप्लोमा इन एलीमेंटरी एजुकेशन न्यूनतम योग्यता हे और हाई स्कूल के लिए बीएड डिग्री की रखा गया है परन्तु देश भर से सुझाव आ रहे हैं कि मिडिल स्कूल के अध्यापकों के लिए बीएड एलिमेंटरी एजुकेशन डिग्री मान्य की जाए जिससे गुणवतात्मक सुधार हो सके।

अध्यापक शिक्षा में आई गिरावट को दूर करने में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सुझाव भविष्य में गुणवत्ता के लिए सटीक कदम प्रतीत होते हैं। देश में युवाओं और बच्चों को अध्यापक शिक्षा में विश्व में अपनी भारतीयता की पहचान बनानी है जिससे पाठ्यक्रमों में नवीनतम बदलावों को स्थान देना होगा। अध्यापन के पेशे की प्रतिष्ठा को बहाल करने के लिए सभी स्तरों पर प्रयास करने की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम को सुधारना, गुणवत्ता युक्त संस्थानों को चिन्हित करना, अध्यापन में रुचि रखने वाले मेधावी छात्रों का चयन करना, अध्यापन में नवीन बदलावों को विकसित करने के लिए परीक्षण केन्द्रों की स्थापना, अध्ययन मॉडल, नई तकनीकों का इस्तेमाल, अध्यापन के नए तरीकों को उत्साहित करना, देश के प्रत्येक जिले में एक मॉडल अध्यापक शिक्षण संस्थान स्थापित करना, एन.सी.टी.इ. , एन.सी.ई.आर.टी. और एस.सी.ई.आर.टी. में उचित तालमेल, राज्य सरकारों और केंद्र सरकार को मिलकर अध्यापक शिक्षा के सुधार में टास्क फार्स/मॉनिटरिंग समूह बनाना, शिक्षा मंत्रालय का मार्गदर्शन और अध्यापक शिक्षा विषय विशेषज्ञों का चयन जो देश भर में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सुझाए रास्तों को लागू करवाने में सहायक हो सके। मेधावी छात्रों के चयन के लिए एनटीए की सहायता ली जानि चाहिए जो कि पूरे भारत वर्ष के अध्यापक शिक्षा संस्थानों की दाखिला प्रक्रिया में सहायक हो सके सतत् मॉनिटरिंग को प्रौद्योगिकी की सहायक ली जाए। तभी हम भावी पीढ़ी को नैतिक, भारतीय मूल्यों, भाषाओं, ज्ञान, लोकाचार और परम्पराओं जनजातीय परंपराओं के मर्म को जानने वाला अध्यापक बना सकेंगे। ❑

स्वदेशी संकल्पना, आर्थिक उदारीकरण के दुष्परिणाम

विकास का स्वदेशी आधारित मार्ग एवं शिक्षक की भूमिका

भगवती जागेटिया
ऐसोसिएट प्रोफेसर
एम.एल.वी. राज.
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
भीलवाड़ा (राज.)

प्रत्येक समाज एवं देश की अपनी सांस्कृतिक विरासत होती है। देश की प्रगति और विकास का मॉडल वहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों के साथ जुड़ा होना चाहिए। आधुनिक होने का आशय पश्चिमी अंधानुकरण नहीं होना चाहिए। आधुनिकीकरण के क्रम में राष्ट्र की संस्कृति की भावना का समावेश विकास की नीतियों में होना ही चाहिए। स्वदेशी एक भावना है। इसी भावना से ही देश (भारत) सर्वांगीण प्रगति कर सकता है।

देश प्रेम की साकार और व्यावहारिक अभिव्यक्ति ही 'स्वदेशी संकल्पना' है। स्वदेशी का अर्थ दुनिया से अलग रहना नहीं है। हमारी परंपरा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की रही है अर्थात् मानवीय चेतना के स्तर पर अंतरराष्ट्रीयता का विस्तार ही स्वदेशी है। 'राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता' व 'राष्ट्रीय स्वाभिमान' का आग्रह स्वदेशी की मूल संकल्पना है।

'स्वदेशी' का संबंध केवल माल या सेवाओं से ही नहीं है, अपितु देश को आत्मनिर्भर बनाने की भावना, राष्ट्र की सार्वभौमिकता और स्वतंत्रता की अक्षुण्णता की भावना के साथ-साथ समानता के आधार पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भावना से है।

भारत की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में सबसे प्रमुख आवश्यकता समाज के सभी वर्गों के लिए रोजगार की व्यवस्था करना है। जहाँ प्राचीन समय में अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार हमारी सामाजिक व्यवस्था थी। गाँवों में कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नहीं था। इस जीवन पद्धति में प्रत्येक जाति और वर्ग के लोगों के पास काम होता था। वर्तमान में हम ज्यों-ज्यों शिक्षित होते गए। रोजगार संबंधी समस्या घटने की अपेक्षा बढ़ती गई। हमारा आर्थिक ढाँचा चरमराने लगा। 1991 में आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीतियों के दुष्परिणाम जल्दी ही सामने आने लगे।

आर्थिक उदारीकरण के दुष्परिणाम

आर्थिक उदारीकरण के दृष्टिगत कुछ प्रमुख दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं -

विदेशी कम्पनियों का शिकंजा

जहाँ पहले हमारी अर्थव्यवस्था राज्य के नियंत्रण में थी, वहीं आर्थिक उदारीकरण व वैश्वीकरण के पश्चात् हमारी आर्थिक नीतियाँ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों एवं विदेशी एकाधिकारवादी निगमों से अधिकाधिक प्रभावित होती गयी। भारतीय अर्थव्यवस्था जो आजादी से पूर्व लंबे समय तक ब्रिटिश राज के नियंत्रण में रही, धीरे-धीरे विदेशी कंपनियों के चंगुल में फँसती गई।

परिणामस्वरूप राष्ट्र हितों की अनदेखी हुई और विदेशी कम्पनियों द्वारा शोषण बढ़ता गया।

बेरोजगारी की समस्या

आर्थिक समृद्धि के दावों के बीच अर्थव्यवस्था की ठोस वास्तविकताएँ चिंता का विषय रही है। 'स्वरोजगार' भारतीय अर्थव्यवस्था का एक विशिष्ट क्षेत्र है, जिससे राष्ट्रीय आय का 30 प्रतिशत और रोजगार का 54 प्रतिशत प्राप्त होता है। इस क्षेत्र को सुनियोजित तरीके से समाप्त करने की कोशिश इस दौर में निरन्तर होती रही है।

खुदरा व्यापार पर विपरीत प्रभाव

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति देने के कारण कृषि के बाद सर्वाधिक स्वरोजगार प्रदान करने वाले इस क्षेत्र में रोजगार समाप्त होने का खतरा उत्पन्न हुआ। जिस गति से भारत की सर्वोच्च कम्पनियाँ भारत के विभिन्न शहरों में मल्टीप्लेक्स, मॉल इत्यादि के नाम से अपना फुटकर व्यापार विस्तृत कर रही है। शहर, कस्बे व गाँवों में खुदरा व्यापारी जो अपने-अपने परिवार में 5-6 सदस्यों का व इतना ही कर्मचारी व उनके परिवार के सदस्यों का भरण पोषण करता है। उन्हें इसके कारण अपने व्यापार को बचाने हेतु चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। ग्राहक मल्टीनेशनल कंपनियों के सुव्यवस्थित व वातानुकुलित शोरूम व मॉल की ओर आकर्षित होता है। बहुराष्ट्रीय कंपिनयों का व्यवसाय कई देशों की राष्ट्रीय आय से भी अधिक है और साथ-साथ कई देशों में अधिकतर छोटे खुदरा व्यापारी प्रतिस्पर्धा से ही बाहर हो चुके हैं। अमेरिका, लैटिन अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उन देशों के खुदरा व्यापार पर काबिज हो चुकी है।

कृषि क्षेत्र पर दुष्परिणाम

कृषि जो 65 प्रतिशत से अधिक आबादी की आजीविका का आधार है और देश की जीवन-रेखा समान है, वही उदारीकरण की नीतियों के चलते अत्यधिक दबाव में आया। उदारीकरण के पश्चात् लगातार घटते आयात शुल्कों के कारण देश में कृषि उत्पादों का आयात निरंतर बढ़ता गया। कृषि लागत, कृषि उत्पादों के सही मूल्य नहीं मिलने के कारण कृषि क्षेत्र किसानों के लिए लगातार अलाभकारी क्षेत्र बनता गया।

संक्रामक बीमारियाँ

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न संक्रामक बीमारियाँ भी विश्वव्यापी हो गई। कोविड-19 मानव जीवन के इतिहास में अब तक की सबसे बड़ी त्रासदी है, जो कि चीन से शुरू होकर विश्व के समस्त भागों में फैली। लाखों लोग काल के मुंह में समा गए हैं और अभी तक भी इसका कोई इलाज आज की तथाकथित विज्ञान प्रगति तकनीक द्वारा ढूँढ़ा नहीं जा सका है और अभी भी लोग डरे सहमे अपनी दैनिक दिनचर्या कर रहे हैं।

'लोकल फॉर वॉकल' का आह्वान देश के वर्तमान समय की आवश्यकता है। समग्र विकास का स्वदेशी मॉडल विकसित करने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित प्रकार से हो सकते हैं -

लघु उद्योगों को बढ़ावा

देश के सम्पूर्ण उत्पादन का 95 प्रतिशत उत्पादन इसी क्षेत्र की इकाइयों द्वारा होता है। सूक्ष्म, लघु व मध्यम क्षेत्र की समस्याओं के समाधान कर इसे और सशक्त बनाया जाना चाहिए। जिससे भारत वर्ष की विशाल श्रमशक्ति, स्थानीय संसाधन एवं कौशल का समुचित उपयोग हो सके।

भारत की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में सबसे प्रमुख आवश्यकता समाज के सभी वर्गों के लिए रोजगार की व्यवस्था करना है। जहाँ प्राचीन समय में अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार हमारी सामाजिक व्यवस्था थी। गाँवों में कोई भी व्यक्ति बेरोजगार नहीं था। इस जीवन पद्धति में प्रत्येक जाति और वर्ग के लोगों के पास काम होता था। वर्तमान में हम ज्यों-ज्यों शिक्षित होते गए। रोजगार संबंधी समस्या घटने की अपेक्षा बढ़ती गई। हमारा आर्थिक ढाँचा चरमराने लगा। 1991 में आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीतियों के दुष्परिणाम जल्दी ही सामने आने लगे।

सामुदायिक इकाई 40 से 50 हजार तक की जनसंख्या या 10 से 15 गाँवों को मिलाकर स्वावलंबी ग्राम/ सामुदायिक इकाई बनायी जा सकती है। यह व्यवस्था स्थानीय पहल, कौशल और उद्यमिता का उपयोग करने का पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकेगी।

देशानुकूल प्रौद्योगिकी

भारतवर्ष के सर्वांगीण विकास हेतु हमें ऐसी प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जो इसकी विशिष्ट प्रकृति, मूल्यों एवं आवश्यकताओं के अनुकूल होते हुए समस्याओं का उचित समाधान करती हो। ऐसी तकनीकी या प्रौद्योगिकी जो प्रकृति के साथ सामंजस्य कर सके अर्थात् प्रकृति के शोषण पर आधारित न हो तथा अपार श्रमशक्ति का समायोजन कर आधारित न हो तथा श्रमशक्ति का समायोजन कर सके और पूंजी और ऊर्जा की बचत करते हुए उत्पादकता में प्रचुर वृद्धिकारी हो।

तकनीकी का राष्ट्रवाद

विदेशी कम्पनियों को देश के निर्माण क्षेत्र हेतु आमंत्रित करने से हमारी अपनी प्रौद्योगिकी विकसित नहीं हो सकेगी। तकनीकी राष्ट्रवाद या टेक्नो-नेशनेलिज्म की रीति-नीति अपनाकर स्वदेशी व स्वावलम्बन के उद्देश्य से ही हमारे देश के सामाजिक-आर्थिक परिवेश को बदलाजा सकेगा।

मितव्ययी प्रौद्योगिकी

उत्पादों के विकास व प्रवर्तन में मितव्ययी प्रौद्योगिकी के उत्पाद प्रस्तुत करना व अल्प लागत वाले आविष्कारों से बड़े उत्पाद एवं प्रौद्योगिकी विकसित करना व विश्व के बाजारों में अपनी उपस्थिति बढ़ाना सहज सम्भव है।

विकेन्द्रित अर्थतंत्र

पूंजीवादी व साम्यवादी प्रणालियों का विकल्प विकेन्द्रित स्वावलम्बी अर्थतंत्र ही है। वर्तमान में देश की जनसंख्या 130

करोड़ से ऊपर है। ग्राम संकुल और परिवार को आधार बनाकर विदेशी और सहभागिता आधारित स्वावलम्बी विकेन्द्रित अर्थतंत्र के निर्माण का प्रयास करना वर्तमान समय की आवश्यकता है। नैतिक नेतृत्व के माध्यम से समाज के स्वत्व, स्वाभिमान एवं स्वावलम्बन का जागरण इस दिशा में सार्थक होगा।

कृषि विकास

प्रतिवर्ष वर्षा व हिमपात से प्राप्त जल के अनुकूलतम उपयोग से देश की सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि को सिंचित भूमि बनाया जा सकता है। इससे हमारा कृषि उत्पादन चतुर्गणित होकर विश्व की दो तिहाई जनसंख्या की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। ऐसा होने पर हमारा देश विश्व की नम्बर एक खाद्य शक्ति बन सकता है। किसान की आय में वृद्धि होने पर विकास का मार्ग स्वत: प्रशस्त होगा।

उद्यम सहायता संघ

संगठित व असंगठित सूक्ष्म, लघु व मध्यम श्रेणी के उद्योग संकुलों को उद्यम सहायता संघों के रूप में विकसित करके इनके उत्पादों व ब्राण्डों को और अधिक वैश्विक पहचान, प्रतिष्ठा व बाजार उपलब्ध कराये जा सकते हैं। उर्ध्व सहायता संघों के द्वारा जटिल व उच्च प्रौद्योगिकी के उत्पादों का संवर्द्धन भी किया जा सकता है।

पर्यावरण अनुकूल विकास

जल संग्रह व प्रबंधन, भूमि संरक्षण, वन संवर्धन तथा प्रबंधन, जैविक कृषि, वैकल्पिक ऊर्जा, पारम्परिक तकनीकी व प्रौद्योगिकी, भारत की स्वास्थ्य परम्परा एवं चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद, योग, वन औषधीय संपदा इत्यादि के समुचित उपयोग की योजना बननी चाहिए। जमीन, जल, जंगल, जानवर व जैव-विविधता के रूप में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, संवर्द्धन के समुचित व सामंजस्य पूर्ण उपयोग पर ध्यान देने वाली व्यवस्था व नीति बननी चाहिए। सौर ऊर्जा का अधिकतम उपयोग होना वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

समग्र रूप से हम इसके कारणों पर विचार करते हैं, तो यह सब हमारे स्वदेशी विचार में कमी के कारण हुआ। और अधिक गहराई से विचार करें तो इस स्व के प्रति हमारे भाव का शनैः शनैः ह्रास हुआ है उसका कारण हमारी दिशाहीन शिक्षा पद्धति है। वहीं शिक्षा सच्ची है, जो स्वाभिमान के साथ स्वतन्त्र रूप से आजीविका सिखाएँ । शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति में सद्‌गुणों और संस्कारों का विकास करें। वर्तमान में अंगीकार नई शिक्षा नीति इसी संकल्पना व भावना पर आधारित है। शिक्षकों की स्वदेशी विचारधारा के विकास में महती भूमिका हो सकती है। शिक्षक विद्यार्थियों को जो आगे चलकर देश के सुसभ्य और सुसंस्कृत नागरिक बनते हैं, ये इस स्वदेशी विचार का बीजारोपण कर सकते हैं।

बहुआयामी शिक्षा से ही समाज के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इसके अभाव में सामाजिक संतुलन बिगड़ने की आशंका रहती है। वर्तमान में जो परिदृश्य है, उसमें शिक्षा के दो प्रमुख पक्षों- 1. ज्ञान-विज्ञान (नवीनतम सूचनाएँ, जानकारियाँ, प्रौद्योगिकी आविष्कार एवं इनके तथ्यात्मक विश्लेषण), एवं 2. संस्कार (स्वावलंबन, राष्ट्रीयता, सदाचार आदि नैतिक मूल्य) में से प्रथम पक्ष पर ही अधिकतम ध्यान केन्द्रित है, परिणामस्वरूप विश्व में सर्वाधिक युवाओं वाला भारत सर्वाधिक समस्याओं से ग्रस्त देश बन गया है।

इन वास्तविक स्थितियों के संदर्भ में ही हमारी शिक्षा पद्धति होनी चाहिए। हर विद्यालय में राष्ट्रधर्म उक्त शिक्षा भी अवश्य होनी चाहिए। सद्‌गुणों के विकास हेतु संस्कृतियुक्त शिक्षा की आवश्यक है।

स्वदेशी आंदोलन में शिक्षकों की भूमिका

स्वदेशी स्वाभिमान - शिक्षक विद्यार्थियों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति स्वाभिमान जगाएँ। विद्यार्थियों से स्थानीय, स्वदेशी व मजबूरी में विदेशी अपनाने का आग्रह करें।

प्रेरक प्रसंगों द्वारा राष्ट्रीयता की भावना का विकास - शिक्षक का यह दायित्व है कि वह विद्यार्थियों को पाठ्य सामग्री समझाते समय प्रेरक प्रसंगों द्वारा छात्रों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें।

राष्ट्रीय संप्रभुता एवं स्वतंत्रता का महत्त्व - शिक्षक विद्यार्थियों को भारत को मिली स्वतंत्रता के संबंध में हमारे शहीदों के बलिदान की जानकारी देवें। साथ ही हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के गौरवमय

संस्मरणों को उद्धृत करें।

पर्यावरण के प्रति जागरूकता - शिक्षक विद्यार्थियों से अपने गांव, नगर, जिले, प्रदेश, देश या विश्व पर्यावरण की जानकारी देवें। साथ ही इसे संरक्षित करने हेतु भारतीय अवधारणा की जानकारी देवें।

स्वभाषा को प्रमुखता - शिक्षक अध्यापन के दौरान अधिकाधिक स्वभाषा का प्रयोग करें। इसके महत्व के संबंध में विद्यार्थियों को अवगत कराएँ। शिक्षक स्वभाषा के प्रति विद्यार्थियों में स्वाभिमान जागृत करें।

राष्ट्रीय स्वाभिमान - राष्ट्र नायकों एवं स्वतंत्रता सेनानियों की जीवनियों के द्वारा विद्यार्थियों में राष्ट्रीय स्वाभिमान का विचार किया जाना चाहिए। भारतीय वैज्ञानिकों, विचारकों, दार्शनिकों के अधिकाधिक उदाहरण विषयवस्तु के साथ दिये जाने चाहिए।

राष्ट्रीय चरित्र एवं नैतिकता - शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों से राष्ट्र प्रेम राष्ट्रीय चरित्र एवं नैतिकता पर मुख्य विषयवस्तु के साथ-साथ विचार किया जाना चाहिए।

विद्यालय परिसर की सज्जा - विद्यालय परिसर राष्ट्र नायकों, प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिकों एवं चिन्तकों के चित्रों एवं उनके उद्घोषों से सुसज्जित होने चाहिए।

राष्ट्रगान व राष्ट्रगीत की अनिवार्यता - विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने के लिए राष्ट्रगान व राष्ट्रगीत अनिवार्य किया जाना चाहिए। समय-समय पर अन्य राष्ट्रभक्ति गीतों से संबंधित आयोजन भी किए जाने चाहिए।

क्षेत्र-भ्रमण - शिक्षक विद्यार्थियों को केवल कक्षा-कक्ष में पठन पाठन ही नहीं कराये वरन् छात्रों को भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति से अवगत करवाने हेतु उन्हें विशिष्ट स्मारकों, दर्शनीय स्थलों पर क्षेत्र-भ्रमण हेतु लेकर जाएँ।

शिक्षक 'रोल मॉडल' - वर्तमान परिदृश्य में विद्यार्थियों के 'रॉल मॉडल' फिल्मी नायक-नायिकाएँ होते हैं, परन्तु शिक्षक अपने मन, वचन कर्म में साम्य रखकर विद्यार्थियों के 'रॉल मॉडल' हो सकते हैं। शिक्षक को गुरु विशिष्ट, सांदिपन, द्रोणाचार्य या चाणक्य के गुरुत्व को याद रखना चाहिए।

कुछ अन्य गतिविधियाँ भी शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों के माध्यम से सम्पन्न कराई जा सकती है।

- कम से कम एक परिवेश खादी का सिलवाया जाए।
- पॉलीथीन (कैरी बैग) का उपयोग नहीं करें।
- रेल आदि में चाय के प्लास्टिक प्याले नकारें।
- यथासंभव (खाद्य पदार्थ) घरेलू वस्तुओं का उपयोग करें।
- नल का सीधा उपयोग कम कर बाल्टी लोटे का उपयोग करें।
- बिजली का संयमित उपयोग करें।
- पेट्रोल, डीजल का संयमित उपयोग करें।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बने घातक शीतल पेय न पिएँ।
- कृषि आधारित वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा देवें।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों का उपयोग बंद करें।
- आय का कुछ भाग बचत एवं सामाजिक कल्याण के कार्यों में व्यय करें।
- वृक्षारोपण एवं वृक्षों का संरक्षण करें।
- शुभ कार्यों, होटलों आदि में टीशुपेपर का उपयोग रोकें।
- मंगल (शुभ) कार्यों में मिठाई वितरण में प्लास्टिक का उपयोग न करें।
- कागजों का समुचित उपयोग करें।
- निर्माल्य (भगवान पर चढ़े फूल) जलाशयों में न फेंके।
- यथासंभव सार्वजनिक परिवहन सेवा का ही उपयोग करें।
- अपरिहार्य होने पर व्यक्तिगत वाहन का उपयोग।
- स्वदेशी का साहित्य पढ़े, संग्रह करें, लोगों को पढ़ाएँ।
- स्वदेशी के प्रचार हेतु प्रतिदिन थोड़ा समय दें।
- साधनों का सीमित उपयोग करें।
- सार्वजनिक या शासकीय साधनों का दुरुपयोग न करें, क्योंकि वह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है।
- विदेशी हर वस्तु अच्छी, स्वदेशी हर वस्तु खराब उपहास न करें।
- देश को आत्मनिर्भर बनाने हेतु संकल्प करें। ❑